मूल्य रु. २०.००

प्रथम संस्करण : १९५२
नौवी आवृत्ति : १९८२

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२

मुद्रक : रुचिका प्रिंटर्स द्वारा गौतम आर्ट प्रेस,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

RAJAT SHIKHAR
Poetical Plays by Sumitranandan Pant

प्रियवर
दिनकर को

विज्ञप्ति

रजत शिखर मे मेरे छ काव्य रूपक सगृहीत है, जो आकाशवाणी से सक्षिप्त रूप मे प्रसारित हो चुके है। इन रूपको मे चौबीस मात्रा का अतुकान्त रोला छन्द प्रयुक्त हुआ है, जिसमे नाटकीय प्रवाह तथा वैचित्र्य लाने के लिए यति का क्रम गति के अनुरूप ही बदल दिया गया है एव तेरह ग्यारह के स्थान पर दो बारह अथवा तीन आठ मात्रा के टुकडो पर रखना अधिक आलापोचित सिद्ध हुआ है। पद के अन्त मे दो गुरु मात्राओ के स्थान पर लघु गुरु या दो लघु मात्राओ का प्रयोग कथोपकथन की धारा-वाहिकता के लिए अधिक उपयोगी प्रमाणित हुआ है। पद्य नाट्य मे लय की गति को अक्षुण्ण रखने के लिए यह आवश्यक हो है कि पढते समय प्रत्येक चरण के अन्त मे यथेष्ट विराम दिया जाय। इति—

१५ जुलाई '५१ सुमित्रानंदन पंत

'रजत शिखर' मनुष्य की अन्तश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है। इस काव्य रूपक मे जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल सचरणो को प्रदर्शित किया गया है। मानव-मन के विकास की वर्तमान स्थिति मे ऊर्ध्व के अवरोहण तथा समतल के आरोहण पर बल देकर दोनो मे समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

स्त्री पुरुप स्वर
युवक साधक
युवती
मनोविश्लेपक
राजनीतिज्ञ
विस्थापित

(प्राणोन्मादन वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

वन मर्मर की हरी - भरी घाटी यह सुन्दर,
कल-कल बहती जहाँ मुखर प्राणो की सरिता
आवेगो के फेनिल मानस पुलिन डुबाकर !
यहाँ प्रसारो मे हँसता जीवन स्वर्णातप
शोभा के ताने - वाने मे सतरँग गुम्फित,
मृगजल - सी शत छाया-इच्छाएँ लहराती
नि स्वर नूपुर वजा बीथियो मे ममता की !

यहाँ वनैले फूलो की मासल सुगन्ध पी
मारुत उन्मद लोटा करता हरीतिमा के
घने उभारो मे, गर्तों मे, इन्द्रिय मादन !
मुग्ध स्वर्ण प्रभ भृग गूँजते वीरुध जग की
कुसुम योनियाँ चूम गन्ध रज, गर्भ दान दे !
यहाँ तितलियाँ रग अग भगिमा दिखाती
वन - अप्सरियो-सी फिरती शोभा इंगित कर,
मौन ज्योतिरिंगण निशीथ के अन्धकार मे
चमक झमक उठते प्रकाश के संकेतो-से !

स्त्री स्वर

नाम - हीन आशाऽकाक्षाएँ यहाँ अतन्द्रिल
इन्द्रजाल बुनती अपलक स्वप्नो के मोहक :
अमिट लालसा तृष्णाओ की चल केंचुलियाँ
रेगा करती गरल मदिर क्षण फन फैलाये !
यहाँ प्रीति ज्वाला सुन्दरता हाला पीकर
लिपटी रहती सघन मोहतम के कुजो मे :
और सुनहले रहस पक मे धँस जीवन के
मन के मुग्ध चरण बँध जाते अलस श्रान्ति मे !

स्फुरित शीर्ष चेतनोर्मि,
जयति, शक्ति पुरुष स्ववश !
(तानपूरे के स्वर)

युवक

बरस रहा आत्मस्थ स्वरो का नि स्वर निर्झर
अधिमानस के नभ से, सुधा स्रवित कर अन्तर,—
किन्तु हाय, मैं सौरभ मृग - सा गन्ध अन्ध हो
भटक रहा प्राणो की इस मोहित घाटी मे :
जिसकी छलना के दिङ् मायावी प्रसार मे
खो खो जाती मन की गति, चल इन्द्रिय सुख के
पखो मे छटपटा, श्रान्त श्लथ हो अतृप्ति से !

हँस हँस यौवन की सतरँग आशाऽकाक्षाएँ
इन्द्रधनुष दीपित वाष्पो की भाव भूमि मे
विवश मोह लेती मानस को, निज रोमाचित
रग पाश मे बाँध, लिपट कटकित लता-सी !
चारो ओर बिछे है मोहक जाल अगोचर
आवेशो की रत्नच्छायाओ के गुम्फित,
कोमल मुखर स्वरो से मर्माहत करती उर,
फूल मौन छवि से मोहित कर लेते अन्तर;
रूप हीन सौरभ अदृश्य मृदु रजत सूत्र से
खीच चेतना को कर देती व्याप्त बहिर्मुख !—

हास अश्रु की घाटी यह . हँसमुख फूलो की
पलको से झरते रहते मोती के आँसू .
धरती का चातक प्रेमी आकाश कुसुम का,
अन्ध चकोर अँगारे चुग निज तृषा बुझाता,
गन्ध मधुप गाता काँटो मे फूल के लिए ! !
(मनोमोहक वाद्य सगीत)

इच्छाओ की मर्म गुजरित इस द्रोणी मे
जब प्रवृत्ति पथ, रत्नखचित आकाश सेतु - सा,
अपनी शत रगो की छायाएँ बखेरकर
अपलक कर देता लोचन : मुग्धा चपलाएँ
स्मित कटाक्ष से पुलकित कर देती तन, चचल
ज्वालाओ के स्पर्शो से प्राणो को उकसा
शरद चाँदनी दुग्ध फेन - सा कम्पित उर ले
स्वप्नो की गुजित चापो से निशा कक्ष को
मुखरित कर देती सहसा जब नव वसन्त श्री
फूलो के मृदु अवयव शोभा मे लपेटकर
अँगडाई भरती, वन सौरभ की साँसो से
समुच्छ्वसित कर हृदय और उन्मद स्वप्नो की
मोहकता से भरी नवल यौवन की अगणित

आशाऽकांक्षाएँ हर लेती आत्मबोध को,—
तब, जाने, मानस मे, नीरव ज्योति चरण धर,
स्नेह मधुरिमामयी कौन, नव उषा किरण - सी,
करती सहज प्रवेश, हृदय मे जगा अभीप्सा,—
मुग्ध, आत्म विस्मृत कर अन्तर को क्षण-भर मे।
खुलता हो अन्तरतम का चिर रुद्ध द्वार ज्यो
खुलता उर का रहस व्यथामय मर्म प्रीति व्रण
विद्रुम विगलित दिव्य मौन लालिमा लोक-सा,
करुणा शीतल करता जो लालसा दाह को।

(करुण वाद्य संगीत)

कैसे मैं जीवन के रंजित कर्दम से उठ,
भाव तृषित मृग मरीचिका से मोह मुक्त हो,
आरोहण कर रजत चेतना सोपानो पर
पहुँचूँ अन्तर्मन की उस प्रज्ज्वलित भूमि तक,
जिसके शान्त शिखर मोहित करते भू का मन,
चिर हिल्लोलित मानस के हर्षातिरेक-से।

(द्विविधासूचक वाद्य संगीत)

अह, फिर स्वर्ण रजत वाष्पो के सतरंगी पट
आच्छादित कर लेते अन्त: शुभ्र शिखर को,—
चपलाओ के विभ्रम से कर चकित मनोदृग।
फिर-फिर प्राणो की अभिलाषा कनक भुजग-सी
लिपट, बाँध देती उत्सुक बढते चरणो को।
हँसमुख गर्त निगल जाते उच्चाकाक्षा को,
अतल मग्न कर उर प्रान्तर को अन्धकार मे।
धीरे - धीरे झींगुर - सी फिर रेंग कामना
जड विषाद को कँपा, जगाती सुख की तृष्णा,—
इस प्रकार नित चलता रहता जीवन अभिनय
और बदलते रहते चल पट छायातप के।

(कोयल की कूक)

लो, जीवन की नव मंजरित प्रथम वसन्त - सी
प्राण सखी आ रही इधर ही राह भूलकर!
या गत स्मृतियो से प्रेरित हो? कोयल उसका
अभिनन्दन करता है उत्सुक मर्म कूक भर!
कुहू, कुहू,—लहरो-से उठते स्वरावेश मे
मेरे प्राणो की उत्कण्ठा बरस रही है।

मेघो के अम्बर मे शशि की रजत तरी ज्यो
तिरती स्वप्नो से रँग-रँगकर शिखर फेन के,
मेरे प्राणो मे उतराती प्रेयसि की स्मृति
निज किशोर लीला का चचल मुग्ध हास्य भर!
विरल जलद से स्वर्ण बिम्ब-सा उसका स्पन्दित

-गौर वक्ष है सतत झलक उठता स्मृति पट मे !
आज उतर आयी वह ज्यो साभार धरा पर
-नव मधु की इच्छाओ के पखो मे उडकर !

(दूर से प्रवाहित गीत के स्वर)

नव वसन्त क्या लाया ?
प्राणो की घाटी मे फिर
फूलो का पावक छाया !
सुन कोयल का दाहक कूजन
मधुपो का उन्मादक गुजन,
स्वप्नो ने अन्तर् मर्मर भर
कैसा गीत जगाया !
रँग-रँग की इच्छाएँ हँस - हँस
मन को पागल करती बरबस,
पग - पग पर रुकती मैं उन्मन
किसने मुझे लुभाया !
घिरते आज क्षितिज मे क्यो घन
सौरभ के, भावो के मादन,
चल वसन्त के नभ मे मन्थर
सावन क्यो घिर आया ?
अधरो मे नव कलियो की स्मित,
पलको मे स्मृति की झर अविदित,
मन समीर के पखो मे,
उर मे समुद्र लहराया ?

(युवती का प्रवेश)

युवती

-नव वसन्त का अभिवादन देने आयी हूँ !

युवक

प्रणय मुखर कोयल को अपना दूत बनाकर
स्वय वसन्त श्री आयी है नव शोभा मे
मेरी भग्न कुटी के चिर विस्मृत प्रागण मे !
स्वागत करता हूँ प्रिय ऋतुओ की रानी का !

युवती

-पिक की वाक्पटुता से उपकृत है वसन्त श्री !

युवक

-तुम्हे ज्ञात है, मेरे जीवन के निकुज मे
तुम्ही प्रथम मधुऋतु आयी थी, जब प्राणो के
पल्लव, मर्मर भर, स्वप्नो से सिहर उठे थे !
मदिरारुण लपटो मे उर की आकाक्षाएँ
फूट पडी थी, सहसा तुमको घेर चतुर्दिक्,

मौन मुकुल को घेरे रहते ज्यो नव किसलय !
फूलो की ज्वालाओ सी - अन्तर प्रान्तर मे
सुलग लालसाएँ अवचेतन की चिर सचित
विहँस उठी थी आवेशो के नवल दलो मे !

युवती

बीता हुआ सदैव रहस स्मृति से रजित हो
मोहक बन जाता है ! तब वास्तव का दर्शन
विस्मृत क्षण हो जाता, स्मृति के पट मे केवल
इच्छा का आनन्द स्पर्श सचित रह जाता !

युवक

भूल गयी तुम उस नव यौवन के वसन्त को ?
प्राणो के पावक के उन्मादन वैभव को ?
तब जाने किस निभृत गहन के अन्तराल से
अन्ध समीरण उठ, सौरभ के पखो से छू,
मानस को कर जाता था सौन्दर्य उच्छ्वसित,
भावो के श्लथ सागर को आनन्द तरगित !
रोमाचित हो उठता था तन, कण्टक - वन-सा,
जाने किसके मधुर स्पर्श से !

युवती

नही जानती !

युवक

जब भी आती थी तुम इस अपलक कुटीर मे
वह मधु की मदिरा पी, किसलय लोहित दृग हो,
प्रणय कुज बन जाती थी, कल केलि गुजरित !
कितने ही गोपन वसन्त, पावस, रहस शरद
हमने साथ बिताये है एकान्त प्राण-मन,
सूक्ष्म अदृश्य सूत्र मे बँध अज्ञात प्रणय के !
हाथ हाथ मे लिये, तरुण स्वप्नो के पग धर,
विचरण करते थे हम निर्जन वन वीथी चुन,
लहर समीरण से अभिन्न, सौरभ-से कलि-से !

मर्मर शीतल तरुओ की कम्पित छाया मे
बैठ ग्रीष्म की अलस दुपहरी मे हम प्रतिदिन
प्रणय निवेदन के सुख की मादन विस्मृति मे
तन्मय हो जाते थे ! वर्षा मे श्यामल घन
घिरकर यौवन के दिगन्त मे, गुरु गर्जन भर,
आकुल कर देते थे अन्तर, आकाक्षा की
गहरी छाया डाल धरा पर : विद्युत् अपने
क्षण इगित से प्रणय भीरु उर को अनजाने
शकित कर देती थी—

युवती

भावी की लेखा - सी !

युवक

कितनी बार शरद के रेखा शशि की मैंने
एक और मुख की रेखाओ से तुलना कर
उसे सदोष बताया है, तुमको कूँई के
अपलक नयनो का विस्मय अर्पित कर सादर···!
और तुम्हारी वेणी के चिर कोमल तम मे
गूँथ कभी जब मधु के मुकुलो की सद्य. स्मिति
मैं मन ही मन तुम्हे हृदय स्वप्नो के मुकुलित
प्रीति पाश मे भर लेता था, तब प्रसन्न मन,
तुम अनिमेष दृगो से मेरी ओर देखकर
मन्द हास्य से निज गोपन स्वीकृति देती थी ! —
कह दो, तब क्या वह केवल सान्त्वना मात्र थी,
या कोमल उर का सुमधुर उपचार मात्र था ?

युवती

जो भी समझो वह केवल कैशोर प्रणय था !
अभी नही छूटी क्या मुग्ध तुम्हारे मन से
मेहदी की लाली - सी वह कैशोर भावना
जिसने निज यौवन उन्मुख प्रच्छन्न राग से
था अजान रँग दिया कपोलो की व्रीड़ा को ?
उस अबोधता को प्रमाण मानोगे क्या तुम ?···
स्पर्श नही कर सकी तुम्हारे भावुक उर को
हाय, वास्तविकता जीवन की नित्य बदलती !

युवक

स्पर्श नही कर सका तुम्हारे चचल मन को
हाय, हृदय का सत्य, कभी जो नही बदलता !!

युवती

आज प्रेम विषयक इन मध्य युगी, शुक जल्पित
उद्गारो की कीर्ति तुम्हारे मुख से सुनकर
मेरा मन अवसन्न, हृदय उद्विग्न हो उठा !

युवक

तब क्यो तुम मुझको फिर से विस्मृत वसन्त की
याद दिलाने आयी, ऋतु शृगार सजा नव ?
वह क्या केवल क्रूर व्यग्य, उपहास मात्र था ?
या नारी उर की स्वाभाविक निर्दयता थी ?
जिस निगूढ निर्ममता की पाषाण शिला से
मायावी विधि ने निर्मित की नारी प्रतिमा.
उसमे मृगजल शोभा, छाया कोमलता भर ?

तुम्हें नही क्या ज्ञात, प्रणय चेतना हृदय को
रिक्त पात्र-सा जब रस सूना कर जाती है,
तब उसको ये उद्दीपन के कुसुमित साधन,
सुख के रंजित उपादान दुखमय लगते हैं,
और सुधाधर की स्मिति भी विष बरसाती है ?

युवती

मुझे ज्ञात है, ये दुर्बल उच्छ्वास मात्र है,
तुम परिणीत नही इन थोथे विश्वासो से !

युवक

कहते हैं, कामिनी कनक साधक के पथ के
बाधक हैं ! पर लक्ष्मी के चल पद क्षेपो से
मेरा काञ्चन का मद कब का चूर्ण हो चुका,
जो स्त्री का यौवन टुकडो मे क्रय कर सकता,
व्रीडा की लाली को डुबा सुरा प्याली मे
शोभा को अवगुण्ठन हीन बना सकता औ'
शोषित कर सकता है संख्याओं के जग को !!

किन्तु शेष थी अभी कामिनी की मृदु ममता,
वह भी विधि ने हँसते - हँसते आज कुचल दी
निर्दय अँगुलियो से तोड निरीह फूल-सी,
उसकी रगो की पखडियाँ छिन्न-भिन्न कर
धरा धूल मे, जिसमे सब कुछ मिल जाता है !

कनक काम के ही पावक का, तप पूत कर,
रूपान्तर करना होगा पर नव मानव को,
उसे वासना धूम, राग की दाहकता से
क्षार मुक्त कर, परिणत कर शीतल प्रकाश मे :
धूम अग्नि का न्याय प्रकृति का नव सस्कृत कर !
काम - शुद्ध काचन की प्राणोज्ज्वलता से ही
जीवन शोभा की प्रतिमा हो सकती निर्मित !

युवती

मन शास्त्र कुछ और बताता है, पर जो हो···
मैं उन्मन-सी हो, उनसे मिलने आयी थी
सुहृद् तुम्हारे हैं अभिन्न जो, मानव मन के
सूक्ष्म तत्व विश्लेपक, अपने गहन ज्ञान से
मेरी सुप्तात्मा को जगा जिन्होने सहसा
नव चेतन कर दिया, उसे नव दृष्टि दान दे !
अवगाहक - सा उतर अचेतन के निस्तल में
गुह्य सत्य की निधियाँ जो लाये हैं ऊपर,
आर पार अनुशीलन कर मानस विधान का।

युवक

समझ गया मैं!...दूर हो गया मेरा संशय!..
नया केन्द्र मिल गया तुम्हारी मधुर वृत्ति को,
नया हृष्ट आधार हृदय की प्रणय क्षुधा को!
सदा रही आवेग शील, चिर अभिनव प्रिय तुम,
छिपा रही हो मुझसे अब उर की दुर्बलता
मनोज्ञान का उस पर अंचल डाल रुपहला!
लो, सुखव्रत आ रहा इधर ही, तुम्हे खोजता!

(मनोविश्लेषक सुखव्रत का प्रवेश)

सुखव्रत

नमस्कार!...ओ, तुम भी यहाँ उपस्थित हो तब!

युवक

इन्हे खीच लाया पहिले ही मन का आग्रह!

युवती

सुनती थी मैं, दीप तले रहता अँधियाला,
वह सच निकला. तुमने अपने बाल्य सखा को
अन्धकार ही मे रक्खा, अपने प्रकाश से
उनको वचित कर,—क्या यह आश्चर्य नही है?

सुखव्रत

तुमने नही सुना, साधक, कवि, प्रेमी, पागल
वायवीय तत्वो के बने हुए होते है:
विधि ने उनका हृदय सूक्ष्म कल्पना द्रव्य से
स्वप्न ग्रथित है किया. नित्य वे स्वर्ग धरा के
मध्य भावना पख मारते रहते निष्फल!
मेरे बाल्य सखा भी साधक-है सम्भव है,
प्रेमी भी इनकी उत्तेजन-शील शिराएँ
सदा ज्वार भाटाओ पर उतराती रहती!
जीवन और जगत के प्रति ये अनासक्त है,
और, अपरिचित भी शायद!—

युवती

क्या विडम्बना है!
मैं इन पर बचपन से ही ममता रखती हूँ,
पर ये मुझको नही समझते!

सुखव्रत

मुझे ज्ञात है,
प्रणय दान तुम इन्हे नही दे सकी, कदाचित्
हृदय समर्पण करना तुमको इष्ट नहीं था,—
इसमे इनका दोष नही है अवचेतन की

प्रवल शक्ति से ये सन्तत अनभिज्ञ रहे है ।'
उच्च ध्येय से पीडित है इनकी सुप्तात्मा,
वोधात्मा पर पित्र्य प्रभाव रहा छुटपन से,
अहमात्मा नित हीन भाव से रही प्रतारित .
दमित भावना मार्ग खोजती क्षुधापूर्ति का,
जिससे सघर्षण रहता नित चेतन मन मे ।

युवती

कैसी अन्तर्दृष्टि तुम्हे है मानव मन पर ।

सुखव्रत

ऐसी स्थिति मे आत्म पलायन के स्वप्नो पर
मोहित हो, उन्नयन खोजता व्यक्ति निरन्तर :
वास्तवता से कटकर वह काल्पनिक तुष्टि के
ऊर्ध्व गर्त मे गिर पडता, छाया सुख सस्मित ।

युवती

स्वत स्पष्ट है ! ···किन्तु प्रेम कैसे होता है ?
क्यो वँध जाते युगल हृदय अज्ञात सूत्र मे ?

सुखव्रत

प्राण चेतना अपने ही मौलिक नियमो से
सचालित करती मानव की रागवृत्ति को,
सजातीयता प्राणो की आकर्षित करती
युग्मो के हृदयो को गोपन प्रणय पन्थ पर ।
प्रेम चयन कर, सग्रह कर होता कृतार्थ नित,
अन्ध समर्पण मात्र नही वह आवेगो का
अवचेतन परिचालित करता उसकी गतिविधि
स्तम्भित इच्छाएँ विमुक्त कर, पिण्ड द्रवित कर,
कुण्ठाओ को मिटा, रुद्ध ग्रन्थियाँ खोल शत
गुह्य वासनाओ की, आत्मदमन से गुम्फित ।
निश्चेतन मन का रहस्य चिर दुरवगाह्य है !

युवक

तव क्यो शुक की भाँति रटें हम अवचेतन के
उपभेदो को, उच्छृखलता से प्रेरित हो,
यदि उन पर अधिकार नही है चेतन मन का ?

सुखव्रत

सामाजिक भी एक पक्ष है मन.शास्त्र का,—
जिन मूल्यो पर रागात्मक सम्बन्ध मनुज के
निर्धारित होगे भविष्य मे, उनको नूतन
मन शास्त्र देगा, अवचेतन के समुद्र को
कूल मुक्त कर, रूढि रीति के प्रतिबन्धो को

ज्वार मग्न कर, उच्छन प्राणो के प्रवाह को
आवर्तो से गण्ड शून्य—

युवती

इसमे क्या सशय !

सुखव्रत

पचहत्तर प्रतिशत मनुष्य के उद्वेगो का
कारण, रागात्मक प्रवृत्ति का अन्ध दमन है !
थोथी, रुग्ण, अवैज्ञानिक आचार भित्ति पर
प्राणभावना का है भवन बना समाज का,
रुद्ध द्वार, कुण्ठित गवाक्ष नीचे निस्तल से
उठते शत दुर्गन्ध मलिन उच्छ्वास विषैले,
जिनसे रहता सिन्धु - क्षुब्ध मानव का अन्तर !

हमे मुक्त करनी है पहिले काम चेतना
युग-युग की कृमि जटिल ग्रन्थियो से जो पीडित,
रागद्वेप, कुत्सा, कलक की कृपण दृष्टि से
उसे बचाना है, गत नैतिक कोण बदलकर !

युवती

घोर क्रान्ति मच रही आज मानव के भीतर !

सुखव्रत

जब प्राणो का स्वास्थ्य बहेगा मुक्त वेग से
नव प्रणालियो से सामूहिक सहजीवन की,
नवल भावनाओ, प्रवृत्तियो का शोणित तब
स्वत प्रवाहित होगा मासल चेतन मन मे,—
द्वन्द्व चेतना का रूपान्तर कर देगा जो !—
और युगो के शमन दमन, उन्नयन पलायन
उड जायेगे प्राणो के झझा प्रवेग मे !
अवचेतन के अतल सिन्धु से उठ जीवन का
रग ज्वार मज्जित कर देगा जन भू के तट !
शत सहस्र फन खोल पुन निद्रित निश्चेतन
मनोराग की वशी के स्वर सकेतो पर
नाच उठगा—कर विराग के प्रति विरक्त मन !
यह भावात्मक देन अनोखी है इस युग की,
मानस विश्लेषण विज्ञान जिसे देता है !

युवक

बहुत सुन चुका अध प्राण सन्देश तुम्हारा,
निश्चय ही अब नरक द्वार खुलनेवाला है !
निश्चेतन के अन्धकार मे युग का भू-मन
भटक रहा है, नैतिक मूल्यो का प्रकाश खो !

अध पतन मे मुक्ति नही है। ऊर्ध्व गमन ही
मुक्ति द्वार है। ...मोह मुक्त हो गया आज मन !

रग पख वासना प्रणय का मोहक गुण्ठन
मुख पर डाले, प्रकट हुई थी मेरे सन्मुख
मधुर रूप धर स्त्री का, निज छाया-सा अस्थिर,—
यौवन के स्वप्नो का खोल गवाक्ष अर्धस्मित !
मैं जाने कब, अनुभव शून्य, मधुर तृष्णा के
हँसमुख कर्दम मे फँस गया, नियति परिचालित !
नारी की पावन शोभा को देख न पाया,
केवल निज इच्छाओ के मोहक वेष्टन से
रहा खेलता, छाया को उर से चिपकाकर !

युवती

कैसा है दुर्भाग्य—

सुखव्रत

मास की दुर्बलता का !

युवक

लज्जित हूँ मै ! क्षमा चाहता हूँ दोनो से !
स्पर्धा के दशन से पीडित, सवेदन क्षम,
इन्द्रिय स्पर्शो से मर्माहत, भूल गया था
मैं अपने को, मानव आत्मा के गौरव को !

रोमाचक है हाय, इन्द्रियो की यह घाटी,
करुणाजनक कथा है प्राणो के प्रदेश की !
घोर अँधेरी नगरी निस्तल निश्चेतन की,
मुक्त कामना तन्त्र राज्य प्यासे असुरो का !!
देवासुर सग्राम क्षेत्र है मानव का मन,
प्राण भावना समर स्थल है जिसका शाश्वत,
एक रोज मानव को भू की अन्ध गुहा मे
ऊर्ध्व ज्योति की विजय ध्वजा फहरानी होगी,—
तभी मुक्त होगी नि सशय प्राण चेतना !

ऊर्ध्व मान्यताओ का ही सामूहिक जीवन
समतल गत सचरण,—धरा के निश्चेतन से
अविरत सघर्षण कर, नित ऊपर उठकर जो
सामाजिक भू-जीवन मे सगठित हुआ है !—
यही ऊर्ध्व इतिहास सभ्यता का है निश्चय !

सुखव्रत

यही करुण आख्यान रुद्ध आकाक्षा का भी !

युवक

यह सच है, सम्प्रति, मानव के चेतन मन पर

आकर्षण है अध.प्राण अवचेतन मन का,
युग्म भावना लक्ष्य आज दृग आक्षेपो की,
नर नारी का सख्य, मर्म है निभृत कुज का,
गुह्य कक्ष का, अन्ध विवर का,—जनरव दूषित !
उसे उदार, विशद दृग बनना है, विकास प्रिय
मानव सीमाओ को स्वीकृत कर भूपथ की !
दूत दूतिकाओ की, पटु परकीयाओ की
पृष्ठ भूमि कटु बदल, प्रणय के अभिसारो की !
मानवीय सस्कार श्रेणि मे, यौवन हर्षित
प्राणो के रग स्फुरणो को मधुर स्थान दे !

निम्न प्राणचेतना एक दिन ऊर्ध्व गमन कर
रागात्मक भू स्वर्ग रचेगी स्वप्न जाल स्मित,
भले उपेक्षित रही रूक्ष नैतिकता से हो,
अपने आरोहण पथ मे वह देव योनि बन
बरसायेगी भू पर रत्नस्मित आभाएँ
श्री शोभा, विश्वास प्रीति, आनन्द ज्योति की ! ...
व्यापक ऊर्ध्वस्थल पर उठकर प्राण शक्ति ही
मनुष्यत्व मे परिणत होगी सुर आकाक्षित !
नव नारी न र, विभा रश्मि से चिर अन्त स्मित,
विचरेंगे जग मे, कृतार्थ कर भू विकास पथ !

सुखव्रत

धन्यवाद ! ये पुण्य कल्पनाएँ है केवल !

युवती

हाय, पुण्य इच्छाएँ पख अश्व भी होती !

युवक

छँटते जाते है अब धूमिल वाष्पो के घन,
हटती जाती स्वर्णिम नीलारुण छायाएँ,
खुलते जाते अन्तरिक्ष के अन्तर्मुख पट,—
और निखरने लगे शुभ्र निर्वाक् शिखर फिर
ऊर्ध्व प्राण, अन्तश्चेतन सोपान से खडे,—
समाधिस्थ हो उठा पुन हो बहिर्व्याप्त मन !

इस मरकत द्रोणी के हँसमुख सम्मोहन से
मोह मुक्त हो रजत अभीप्सा अन्तस्तल की
आतुर है उड़ने को उन्मेषित पखो मे
मन क्षितिज के पार चेतनातप के नभ मे,—
जहाँ विचारो का अनुगुजन लय हो जाता !

अन्तिम तृण हट गया, कट गया दुर्गम पर्वत ! ...
अतल गर्त नीचे, ऊपर दुर्लंघ्य शिखर है !
नीचे इन्द्रिय रौद रही निर्मम चरणो से,

दुरारोह निर्जनता ऊपर द्वैत शून्य है !—
सहज एक-बहु की स्थिति का आकांक्षी है मन !
जल-जल उठते शीत स्वच्छता से इच्छा पग,
कँप उठता उर, हरित ऊष्मता के अभाव से;
ज्यों - ज्यों आरोहण करता मन मौन शान्ति में
धरती का क्रन्दन ही ऊपर स्वर संगति पा
बन जाता संगीत सुनहली झंकारों का !
मानव ही सुर में परिणत हो जाता उठकर !
अन्न प्राण मन हँस उठते चेतनाऽलोक में,—
सर्वशक्तिमय दिव्य तमस है जड़ धरणी का !

महाश्चर्य है ! वही सत्य है ! ऊपर है जो
शिखर, वही नीचे प्रसार है ! एक संचरण
मात्र ! ऊर्ध्व हो अथवा समदिक्, दोनों ही पर
अन्योन्याश्रित है निश्चय ! दोनों के ऊपर
एक अनिर्वचनीय रहस्य, हृदय रोमांचक !

(जनरव)

किन्तु, कौन आ रहे इधर वे गीत रुदन भर ?

(दूर से प्रवाहित समवेत गीत)

कहाँ मिले स्वर्गवास,
घोर त्रास, घोर त्रास !

एक स्वप्न गया टूट,
एक नीड़ गया छूट
आस पास मची लूट
मृत्यु कर रही विलास !
किधर बह रहा समीर
अतल सिन्धु जल अधीर,
कहाँ मिले, दूर तीर,
भँवर में पड़े प्रयास !
जा रहा किधर उदास
मनुज आज चिर निराश,
यह विकास या विनाश ?
बदल रहा युग लिबास !
बीत गयी काल रात
बज्र गिरा अकस्मात्,
खड़ा शिखर पर प्रभात—
हृदय में न पर हुलास !

(विस्थापितों का प्रवेश)

विस्थापित

विस्थापित हैं, हम धरती के विस्थापित हैं !

शरणार्थी, नव भू जीवन के शरणार्थी है
उफ, जिन काले कृत्यो के अँधियाले से हम
किसी तरह बाहर निकले वे अकथनीय हैं।
मार काट, हत्या, निर्दयता, कटु नृशसता,
पैशाचिक उद्दाम कामना का खर ताण्डव।
नारकीय प्रतिहिंसा, घोर घृणा का उत्सव।
नग्न वासना नृत्य, प्रेत ज्यो अवचेतन के
अट्टहास भर, बाहर सकल निकल आये हो
धरती की रज योनि चीरकर, बलात्कार कर।
बलात्कार, व्यभिचार, मृत्यु के मुख का कटु सुख!!

कुछ स्वर

उफ, किसने चीरा कोमल कदली स्तम्भो को,
स्वर्ण कन्दुको को लूटा,·· फूलो की कम्पित
डालो को धर निर्दयता से तोड मरोडा!
पागलपन था, पागलपन सिर पर सवार तब।
कहाँ मर गयी थी लज्जा सज्जा की ममता?
कहाँ उड गये थे आँखो से फूलो के रँग?
बिखर गयी थी उर की स्वप्न भरी पखडियाँ,
अन्तर की कोमलता थी पाषाण बन गयी।!

शील सभ्यता, दया मधुरता, श्री सुन्दरता
कहाँ मिट गये जीवन के उपचार ये मधुर?
ढेर हो गये ढेर, सभी वीभत्स दृश्य बन,—
भाँय-भाँय करता था तव भूतल श्मशान-सा,
साँय - साँय करता था उर निर्जन मरुथल-सा।

कुछ स्वर

आग, आग! भगदौड! लीलती लपटो का जग!
कान जल रहे, अब भी सुनकर कान जल रहे।
लूट पीट, छीना झपटी ··· ··हम भूत-प्रेत हैं,
सम्प्रदाय के कट्टरपन्थी भूत - प्रेत है।
रूढि रीतियो के धर्मान्ध पिशाच प्रेत हैं।।
कायरता, निष्ठुरता, मानव की बर्बरता का।
प्रतिनिधि है मानव धरती की बर्बरता।
भूमिकम्प था वह मुर्दो के सम्प्रदाय का,
समा गया अब धरती की घायल छाती मे।।

युवती

कान जल रहे, अब भी सुनकर कान जल रहे।

सुखव्रत

एक अचेतन की तरंग के प्रबल घात से
बालू का-सा दुर्ग, यान मानव जीवन का

भीतर से बस सूने, कोरे अभिनेता हो !

कुछ स्वर

हम उन्मूलित है, उच्छेदित इस जगती के,
निज स्वजनो से दूर, परिजनो से चिर वचित !
नष्ट हो गया सब विनाश के भृकुटि पात से,
हम खँडहर हैं महाध्वस के, भीषण पंजर !
खेत बाग, घर आँगन, दारा सुत, स्त्री सम्पद
आँखो के सन्मुख फिरते छायाभासो-से;
दु स्वप्नो से प्रेत ग्रस्त, हम घोर जागती
निद्रा है, जो टूट-टूट जाती फिर भय से !
कुचल रही है बज्र हृदय को निर्दयता से
दु स्मृति की दारुण छायाएँ, कटु प्रहार कर !

कुछ स्वर

क्या होगा अब, क्या होगा ?···अह, उस मिट्टी का,
उन ईंटो का ? कहाँ खो गया दृढ घनत्व वह,
ठोस रूप वह ?—जो झझा झड, लू अन्धड मे
अविचल रहता था, अब सहसा पिघल गया क्यो ?
रिक्त वाष्प बनकर उड गया अचानक कैसे ?
रूप रेख आकृति सब ओझल कहाँ हो गयी ?
क्यो सूना, खोखला हो गया जग क्षण-भर मे !
दु स्मृति है केवल···हम भी अपनी दु स्मृति है !!

युवक

एक ओर मानव मन, जीवन सीमाओ को
अतिक्रम कर, उत्सुक है नव चेतना स्वर्ग मे
आरोहण के हित : अभिनव आनन्द मधुरिमा
ज्योति प्रीति का मगल धाम बनाने भू को .
और दूसरी ओर धरा के अन्ध गर्भ से
निश्चेतन की क्रूर शक्तियो की कल्लोलें
मृत्यु नृत्य कर जीवन शोभा के प्रागण मे
मग्न कर रही जन धरणी को महाध्वस मे,
घृणा द्वेष, हिंसा स्पर्धा के रक्त पक मे !
घोर विरोधी प्रतिस्पर्धी बन अडिग खडे है
पुन. स्वर्ग पाताल, परीक्षा हित मनुष्य की !
मानवता पिस रही युगल निर्मम पाटो मे,
स्वर्ग नरक पर जय पानी होगी मनुष्य को !

कुछ स्वर

हम फिर से घर द्वार बसायेंगे जन - भू पर,
हम मानव परिवार बढायेंगे जन-भू पर !
मृत्यु ज्वार पर चढकर फैल समस्त धरा मे,
नव जीवन सचार करायेंगे हम भू पर !

एक वृत्त हो रहा समापन जग जीवन का
हम फिर नव ससार बनायेंगे जन भू पर !
कलह क्रोध, ईर्ष्या स्पर्धा का गरल पान कर,
हम जीवन का भार बँटायेंगे जन-भू पर !
आधि व्याधि का, रोग शोक का, दैन्य जरा का
हम फिर से उपचार करायेंगे जन-भू पर !
उजड गया जो फिर उसको आबाद कर नया,
हम नव जीवन ज्वार उठायेंगे जन-भू पर !

कुछ स्वर

चुप हो जाओ, चुप हो जाओ !···छायाएँ है
चली आ रही, दल बाँधे,—जीते मनुजो की
भीड चीरती ! छिन्न-भिन्न अवयव है उनके,
टूटे हाथ - पैर, हिलते हड्डी के ढाँचे,—
माया ममता और अधूरी तृष्णाओ का
बोझ पीठ पर लादे वे सब भटक रही है
अन्धकार मे राह टोह, लोहू मे लथपथ,
तार - तार जीवन छायाएँ,—बुड्ढे, बच्चे
नौजवान,·· सब दल पर दल है चले आ रहे !

लँगडाती, गिरती - पडती, कँपती छायाएँ
अगो को छटपटा रही दुख की आँधी मे,
टपक रहे है घाव, खौलता रुधिर बह रहा,
जीवन की इच्छाओ से, सपनो से लोहित···
मा-बहनें है, मा-बहनें वे, · जो पीडा से
चीख रही !·· दुख की कराह से कान फट रहे,
धरती की गूगी पुकार से हृदय छिद रहा !
बहरा है आकाश ! दिशा भी बहरी हैं क्या !
बहरा क्या हो गया विश्व !···यह असहनीय है !!

युवती

आह, कराह से कान फट रहे, हृदय छिद रहा,
भाले की-सी तीव्र नोक से मर्म बिंध रहा !

युवक

हाय, निखिल सभ्यता और भू जीवन की ही
गाथा है शोणित से पकिल, हृदय विदारक !
विस्थापित है हम सब, भूले विस्थापित है,
छूट गया कब कहाँ न जाने देश हमारा,
हम धरती पर विस्थापित है, निर्वासित हैं !
यहाँ खोजने आये सब उस स्वर्ण धरा को,
यहाँ मिटाने आये हम भय रोग जरा को !
लहरो पर लहरें उठती धरती के तम की,
तह पर तह खुलता जाता नभ का प्रकाश है !

'पुन उतर आया मैं धरती की खाई मे
अजलि-सी जो बनी ज्योति को सचित करने :
पुन उतर आया मैं प्राणो की घाटी मे
आकुल है जो अग्नि बीज गर्भित होने को !

सुखव्रत

स्वागत है, स्वागत है।

युवती

सुनने दो, सुनने दो।

युवक

अन्तस् ही मे नही, बाह्य से बाह्य क्षेत्र मे
मैं अनुभव कर सकूँ अनिर्वचनीय सत्य के
अमृत स्पर्श का जन-मन के भावो के स्तर पर,
जीवन की प्रत्येक दिशा, प्रत्येक रूप मे।
मैं अतिक्रम कर सकूँ वाह्य भीतर के अन्तर,
यही प्रार्थना है अन्तर्यामी से मेरी।

सुखव्रत

भाव प्रवण उर का यह नूतन परिच्छेद है।

युवक

इस घाटी मे, अपनी ही छाया के पीछे
भटक रहे जन . छोटे मन के छोटे - मोटे
स्वार्थो मे अनुरक्त परस्पर की स्पर्धा से
उन्नति मे रत एक - दूसरे के परिभव से
जीवन सक्षम इसीलिए कुण्ठित मानव मन
जीवन विमुख, विरक्त, तिक्त हो उठता जग मे !
यहाँ बरसता नही स्नेह हर्षित नयनो से,
सहज समव्यथा छलक नही उठती हृदयो मे,
इस घाटी के रहन - सहन मे श्री शोभा का
घोर अभाव खटकता मन को मानव उर मे,
यहाँ अभी तक प्रेम नही हो सका प्रतिष्ठित
मानव के प्रति, आदर जीवन गौरव के प्रति।
रिक्त प्रतिष्ठा भार झुकाये हुए रीढ को।।
भर-भर उठता हृदय घृणा, थोथे विराग से
श्रान्त क्लान्त अनचाहा मानव जब घर-घर मे
सुनता नित्य कलक कथा, कुत्सा, पर निन्दा।

युवती

यही रूप है आज धरा की वास्तवता का।

युवक

साधक अब मैं नही,—नम्र आराधक-भर हूँ।
साधक मेरे पूजनीय है, ऊर्ध्वारोही,—

समतल गामी जगत प्रणत है जिनके पद पर !
ऊर्ध्व शुभ्र, एकाग्र शिखर पर खडे चिरन्तन
देख रहे है जग के स्वामी भू के उर्वर
इस वहुमुख फैले प्रसार मे, सतजल कल्पित !
अपनी ही आनन्द तरगित रहस प्रकृति को
फूलो की चोली पहने, लहरा हरिताचल,
चूर्ण नील कुन्तल छहरा दिक् सौरभ विश्लथ,
घुटनो के वल बैठ, उच्छ्वसित हृदय सिन्धु ले,
अपलक आयत दृग जो देख रही ऊपर को
अमृत प्रीति वरदान हेतु जीवन साथी से—

'अपने मन्थर दिग् विस्तृत आवर्त शिखर मे
घूम असीम छटा मे अथक अनन्त काल तक,
फिर - फिर तन्मय होती निज अन्त प्रकाश मे
प्राप्त करूँ चैतन्य अमर मै ज्योति शक्तिमय !
ऊपर से नीचे अपार शोभा सुन्दरता
हर्ष प्रीति की आभाएँ नित रहे बरसती—
अन्न प्राण मन के त्रिदलो को विकसित करती !

युवती

कैसी उच्च विराट् कल्पना है धरती की !'

युवक

आराधक वन सकूँ प्रणत मैं दिव्य ज्योति का,
जो इस मृण्मय धरा दीप की अमर शिखा है,
जिसकी करुणा किरणो के अन्त स्पर्शों से
इस द्रोणी का तम स्वप्नो मे दीपित होता !
हम सब विस्थापित हैं . हम सब उत्थापित है !
पुन. बसायेंगे हम धरती की घाटी को,
नव स्वप्नो के स्रष्टा, नव जीवन शिल्पी बन,
मानवीय शोभा गरिमा, आनन्द मधुरिमा
ज्योति प्रीति का स्वर्ग बना जन मगल भू को !

युवती

मैं भी हाथ बटाऊँगी इस लोक कार्य के
आयोजन मे साथ आपके, श्रद्धानत हो !
मेरा मन सन्देह रहित हो गया आज चिर
आश्वासित हो ! ·· ऊपर है प्रकाश का द्योतक,
नीचे निस्तल अन्धकार का ! निचले मन के
आवेगो को हमे सगठित करना होगा
ऊर्ध्वज्योति मे ! ···सयम ही वास्तविक मुक्ति है !
प्राणो का सन्तुलन मुक्ति है मानव मन की,
ऊर्ध्व चेतना का जो क्रीड़ा स्थल है उज्ज्वल !

युवक

यही मर्म है, मैं कृतज्ञ हूँ !

सुखव्रत

प्रवंचना है,
यह प्रवचना···खूब मनोहर छलना निकली
तुम मायामयि, अवचेतन की मोहक तृष्णा···

युवती

मनुज स्वय अपने मन को छलता रहता है,
मुक्त हो गया मेरा मन अब उस छलना से !

सुखव्रत

मुक्ति नही है आत्म पलायन, मधुर मृत्यु है !
जाता हूँ मैं, घोर पलायन के प्रमाद से
मानव मन को सद्य मुक्त करने का व्रत ले !

(प्रस्थान)

युवक

आज नयी मानवता के शुचि प्राण सूत्र मे
नर नारी का हृदय बँध रहा लोक कर्म हित
मिलन शान्ति स्मित, विरह अकातर, प्रीति समर्पित
नयी चेतना से स्पन्दित, सद्भाव सगठित !

आओ, हम दोनो मिल, प्राणो की घाटी मे
विस्थापित मानव का फिर घर-द्वार वसायें,
शुभ्र रजत शिखरो की ऊर्ध्वग दिव्य शान्ति ले,
अम्बर की व्यापकता, सागर की गभीरता,
गिरियो का चिर धैर्य, अथक सरिता की गति ले
भू जीवन के उत्पादन नव आज जुटायें,
आओ, हम नव मानव का घर-द्वार वसायें !

नव वसन्त शोभा से, स्वच्छ शरद सुषमा से
फूलो के सारल्य, युक्त तृण - तृण के वल से,
हम सुन्दर स्वप्नो का जीवन नीड बनायें,
आओ, हम नव का मानव घर-द्वार बसाये !

भ्रातृ भावना, विश्व प्रेम से भी गभीरतम
प्रीति पाश मे बाँधे हम नव मानवता को,
जिसका दृढ आधार एकता हो आत्मा की,
जिसकी शाश्वत नीव चेतना की उज्ज्वलता
मनुज प्रेम के लिए मात्र हो मनुज प्रेम वह,
जग को नव सस्कृति का स्वर्णिम द्वार दिखायें,
आओ, हम नव मानव का घर-द्वार बसायें !

युवती

आज दौडता भूमि कम्प जन - मन धरणी मे,
कैसे हम नव आशा, नव विश्वास बँधाये ?
गरज रहा भीषण अणु दानव विश्व गगन मे
मृत्यु अक मे कैसे हम अमरत्व जगायें !
क्षुधा दैन्य का भार ढो रहे जब असख्य जन
कैसे भू को जीवन शोभा मे लिपटायें ?
आदर्शो मे विरत आज स्वार्थो मे रत जग,
कैसे स्वर्णिम मनुष्यत्व की ज्योति दिखायें ?
कैसे हम नव मानव का घर - द्वार बसायें !

युवक

यह सच है, नव मनुष्यत्व के निर्जन पथ मे
बाधा विघ्नो के दुराग्रही शृग अडे है
स्थापित स्वार्थो से जकडे,—जो पूर्व पक्ष है,
उत्तर पक्ष क्षितिज से इगित करता ज्योतित
मानव भावी के स्वर्णोदय मे दिक् प्रहसित !

आओ, हम अन्त प्रतीति को धर्म बनायें,
आओ, हम निष्काम कर्म को वर्म बनायें,
हम आत्मा की अमर प्रीति के धरा स्वर्ग मे
सब मिलकर जीवन स्वप्नो का नीड सजायें;
आओ, हम नव मानव का घर - द्वार बसायें !

युवती

आज बहुत ही बडा चाँद आया है नभ मे,
अन्तर का खुल गया रुपहला हो वातायन,—
मौन क्षितिज से, शुभ्र हास्य बरसाते भू पर
रजत शिखर, मानव आत्मा की गरिमा-से उठ !
आज प्रार्थना के हित आकुल स्वप्नो का मन !

(समवेत प्रार्थनागीत)

धरा शिखर हे,
अन्तर के ज्योति ज्वार
अजर अमर हे !

ध्यान मौन, उर्ध्वप्राण,
तदाकार पूर्ण ज्ञान,
श्रद्धारोहण समान
शुभ्र सुघर हे !

शान्त क्लेश हो अशेष,
शान्त निखिल राग द्वेष,
भाषा हो भाव वेश
सुन्दरतर हे !

विकसित हो जन अन्तर,
कुसुमित जन-भू के घर,
भोगें नव जीवन वर
नारी नर हे!

ऊर्ध्व गगन उठा निखर,
चन्द्र किरण रही उतर
स्वप्न पख रहे विचर
स्मित नभचर हे!

(२५ जून, १९५१)

फूलों का देश

फूलों का देश सांस्कृतिक चेतना का धरातल है। प्रस्तुत काव्य रूपक में इस युग के अध्यात्मवाद भौतिकवाद तथा आदर्शवाद वस्तुवाद सम्बन्धी संघर्ष को अभिव्यक्ति देकर उनमें व्यापक समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गयी है एवं विश्व जीवन में वहिरन्तर सन्तुलन तथा परिपूर्णता लाने के लिए दोनों की ही उपयोगिता दिखायी गयी है।

स्त्री पुरुष स्वर
कलाकार
वैज्ञानिक
विद्रोही जन

(नव वसन्त सूचक वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

यह फूलो का देश, ज्योति मानस का रूपक·
जहाँ विचरते अन्तर्द्रष्टा कलाकार, कवि
निभृत कल्पना पथ से नित, भावोन्मेषित हो।
यहाँ प्रेरणाओ की स्मित अप्सरियाँ उडकर
बरसाती आभा पखडियाँ शत रगो की,
स्वप्नो से गुजरित यहाँ स्वर्णिम भृगो की
रजत घण्टियाँ बज उठती हर्षातिरेक से—
देवो का सगीत अमर वाहित कर भू पर।
यहाँ काँपती-छायाएँ, शोभा वसनो-सी,
गोपन मर्मर ध्वनि भरती मानस श्रवणो मे,—
भावी की अश्रुत चापो-सी आकृति धरती।

स्त्री स्वर

यहाँ प्राण पुलिनो को भावो से स्पन्दित कर
जीवन की आकाक्षा बहती कल-कल ध्वनि मे,
प्रीतिश्वास-सी समुच्छ्वसित रहती मलयानिल
नाम हीन सौरभ से आकुल कर अन्तर को।
यह मोहिन अभिसार भूमि है गन्धर्वो की,
जहाँ दूर वास्तविक जगत के कोलाहल से
स्वर्णिम द्वाभा मे रचती है सृजन कल्पना
सूक्ष्म विश्व मानव भावी का सतरँग कल्पित !
यहाँ गूँजता रहता है सगीत अहर्निशि,
भाव प्रवण मानस द्रव्यो से प्रवहमान हो !

(वाद्य सगीत समवेत गान)

यह फूलो का देश !
यहाँ निरन्तर जीवन शोभा
सजती नव-नव वेश।

यहाँ लोटते इन्द्रचाप गत

हँसते अपलक स्वप्न मनोरथ
यहाँ झूलता रश्मि दोल मे
मानस का उन्मेष।

झरते स्वर्णिम निर्झर कलकल
भरते प्राणो मे स्वर कोयल,
सुन्दरता को देती स्वर्गिक—
प्रीति हर्ष सन्देश।

यहाँ गूँजते अहरह दिशिपल
बरसा करता जीवन मगल,
सृजन चेतना की यह स्वप्निल
लीला भूमि अशेष।

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

यहाँ विजन छाया वन मे रहता एकाकी
एक स्वप्न द्रष्टा कवि, तरुण अरुण-सा सुन्दर,
लता प्रता से मण्डित कुसुमित पर्ण कुटी मे।

जीवन का सघर्ष, करुण क्रन्दन, चीत्कारें
उसके भाव जगत को छूकर मर्म गीत मे
परिणत हो जाती, युग जीवन के स्वप्नो की
शोभा से वेष्टित हो, नव सन्तुलन ग्रहण कर।
खोजा करता वह विनाश के महाध्वस मे
नवल सृजन की स्वर सगति, उडते मेघो के
त्रस्त जाल मे घिरती तिरती शशि रेखा-सी।
भावोद्वेलित वक्ष, खडा तृण कक्ष द्वार पर,
सोच रहा वह स्वगत, गन्ध गुजित मधुकर-सा—

(स्वप्नवाहक वाद्य सगीत)

कवि

यह छाया का देश, कल्पना का क्रीडा स्थल,
वस्तु जगत अपना घनत्व खोकर इस जग मे
सूक्ष्म रूप धारण कर लेता, भाव द्रवित हो!
जीवन के सघर्षों की प्रतिध्वनियाँ उठकर
यहाँ बदलती रहती उर सगीत मे विकल।
इस मानस भू पर नि स्वर चलते नित सुरगण
स्वप्नो के धर चरण चिह्न आशाऽकाक्षा स्मित।

यहाँ विछाती शत-शत रगो की ज्वालाएँ
अपलक इन्द्र जाल शोभा का, जन - मन मोहन ·
सुन पडती अप्सरियो की पदचाप रुपहली
कँपती-छायाओ के पुलकित दूर्वांचल मे—
आँखमिचौनी खेला करती जो जीवन से।

बडी - बडी चट्टान यहाँ धरती की आदिम
चुप्पी-सी दम साधे नीरव चिन्तन करती .
अर्धरात्रि मे झिल्ली तरु कोटर मे झन - झन
स्वर भर, सूनापन विदीर्ण करती वन भू का,
घोर गुह्य आकाक्षा-सी जग निश्चेतन की !
यहाँ भयानकता सुन्दरता प्रीति पाश मे
बँधकर करती क्षण उपहास नियति का निर्मम !

(गम्भीर प्रसन्न वाद्य संगीत)

कवि

शान्त, सौम्य, सोयी वन श्री अब जाग रही है
नव प्रभात के स्पर्शो से स्वर्णिम चेतन हो,
बरस रहा नीडो से कलरव सृष्टि गान-सा,
सिहर रहे पत्ते थर्-थर्, सुख से विभोर हो !
गन्धपवन मे धरती भीनी साँस ले रही,
जाग रही वन छायाएँ अँगडाई भरती !
तरुण मधुप, षट्पद से हटा पँखुरियो के पट
अर्धस्मित कलियो के मृदु मुख चुम्बन करते ?

यह प्रभात भी ससृति का आश्चर्य है महत्,
मौन प्रार्थना-सा, पवित्र आशीर्वाद-सा !
विस्मित कर देता जो भू मानस पलको को
दिव्य स्वप्न-सा, अमर स्वर्ग सन्देश-सा उतर !
धरती का जीवन सहसा निज ज्योति केन्द्र से
पुन· युक्त होकर, हो उठता पूर्ण काम है !

यह फूलो का देश आज फिर धन्य हो उठा,
वाहित करता जो धरती की ओर निरन्तर
देवो का ऐश्वर्य अतुल,—शोभा सुन्दरता,
ज्योति प्रीति आनन्द अलौकिक स्वर्ग लोक का !

जाग रही है सुप्त प्रेरणाएँ मानस मे,
यह अन्तर्नभ का प्रभात है जन मगलकर !
तरु पत्रो के अन्तराल से छन नव किरणे
लोट रही भू रज पर ज्योति प्ररोहो-सी हँस !

(हर्ष वाद्य सगीत)

युग प्रभात यह एक वृत्त हो रहा समापन
धरा चेतना मे सस्कृति का आज पुरातन !
नव युग की प्राणो की आशा अभिलाषाएँ
मर्म मधुर सगीत लहरियो मे मुखरित हो
गूँज रही है, छाया वन के नव मुकुलो को
घेर चतुर्दिक् ! सद्य स्फुट कुसुमो के मुख पर
विहँस रहे है स्वर्णिम ओसो के मुक्ता कण,

स्वप्नों की पद चापों से कँप उठता भूतल!
देख रहा मैं मनश्चक्ष में, ताल में ध्वनित,
अगणित निर्भय चरण क्षितिज की ओर बढ रहे!

(वाद्य सगीत दूर से आता हुआ नर-नारियों का समवेत गान)

युग प्रभात,
रक्त स्नात, युग प्रभात!

अन्धकार गया हार
मानस का हटा भार,
मुक्त पन्थ, मुक्त द्वार
गयी रात!

सागर में बाँध सेतु
अम्बर में उडा केतु
मानव की विजय हेतु
बढो तात, बढो भ्रात!

पर्वत के गिरें शिखर
मरुथल हो नव उर्वर,
विघ्नों पर, रहो निडर,
करो घात, करो घात!
करो घात!

(नर-नारियों का प्रवेश)

स्त्री स्वर

कौन, कौन तुम, अरुण, वसन्त, मदन-से सुन्दर
पत्रों के प्रच्छाय नीड में यहाँ छिपे हो
पक्षी-से एकाकी? नगरों से, वासों से
दूर, सभ्यता के केन्द्रों से विरत, विमुख हो
युग जीवन सघर्षण से, जन आकर्षण से?

कवि

अरुण वसन्त मदन-सा! पक्षी-सा एकाकी?
कलाकार हूँ मैं, पर जीवन सघर्षण से
विरत नहीं हूँ!·· देखो, मेरी स्वप्न निमीलित
आँखों में भावी का स्वर्णिम बिम्ब पड़ा है!

पुरुष स्वर

(साश्चर्य) भावी का प्रतिबिम्ब?

कवि

स्वर्ग की वेणी से मैं
इन्द्रधनुष को छीन, धरा के तिमिर पाश में
उसे गूँथ जाऊँगा,—देवों की विभूति से
मनुष्यत्व का पद्म खिला जीवन कर्दम में!

ताराओ के छायातप से रँग-रँगकर मैं
जन-भू का उपचेतन, रज की पखडियो को
अन्त सुरभित कर जाऊँगा, नन्दन वन के
फूलो की शाश्वत स्मिति-भर मृण्मय अधरो मे…
मैं नव मानवता की प्रतिमा यहाँ गढ रहा
अन्तर्मन के सूक्ष्म द्रव्य से।

जनगण

हः ह.हः ह ।।

कवि

मै विराट् जीवन का प्रतिनिधि हूँ। मैं वन के
मर्मर से, युग के जनरव से चिर परिचित हूँ।
भौरो का मधु गुजन, कोयल का कल कूजन
मेरे ही स्वर है। स्वर्णातप मेरी स्मिति है।
मेरे उर के स्वप्न तितलियो की फुहार-से
रँग-रँग की शोभा बखेरते जन मानस मे।
ऊषा, ज्योत्स्ना, ओस और तारे मेरा ही
चिर सन्देश वहन करते। पर्वत निर्झर-से
मेरे गायन फूट, दग्ध युग मन के मरु मे
प्राणो का कलरव, जीवन हरियाली भरते।
धरा स्वर्ग को स्वप्न सेतु में बाँध सुनहले
मैं सोपान बना जाऊँगा सुर नर मोहन।

प्रथम स्वर

खूब अहता का ऐश्वर्य मिला है तुमको।

द्वितीय स्वर

आत्म वचना का उन्माद पिये हो मादक।

प्रथम स्वर

कलाकार हो, तभी हवा मे महल बनाते।
रिक्त स्वर्ग मे रहते आत्म पलायन के हो।

कवि

तुम जो अस्त्रो-शस्त्रो से सज्जित सेना ले,
विजय ध्वजा ऊँची कर, चलते सख्याओ मे,
तुम भी मेरा कार्य कर रहे।… धरा धूलि मे
जो जीवन तृष्णा, भुजग, सी शत फन फैला
लोट रही है नीचे, मैं ऊपर से उसकी
शोभा रेखाएँ अक्ति करता तटस्थ हो,
व्यापक युग पट मे सँवारकर. उसकी घातक
विष की फुकारो को पीकर, मर्माहत हो,
हृदय दाह मे जलता प्रतिपल, मैं उस पर हूँ
बरसाता चेतना अमृत निज, तिक्त घृणा को

मधुर प्रीति मे, कटु तमिस्र को उर प्रकाश मे
आत्म विद्रवित कर ! केवल स्वर शब्दो की ही
रिक्त साधना मात्र नही होती युग कवि की.
उसे साम्य सगति, सार्थकता भरनी होती
जीवन विश्रृंखलता मे, सौन्दर्य खोजकर,
मानस कमल खिला कर्दम मे।

प्रथम स्वर

बहुत हुआ बस !

रहन दो यह वाक् चपलता। वह शोभा की
सीमा लाँघ चुकी है। मृगतृष्णा के पूजक,
तुम अपने को जीवन का प्रतिनिधि बतलाते ?
और विधाता बन बैठे हो मनुज नियति के !

द्वितीय स्वर

हम है भावी के निर्माता, मानवता के
जीवन शिल्पी, भू के जनगण जो युग-युग की
लौह श्रृखला तोड, वज्र सगठित हुए हैं।
बन्धन मुक्त, नयी जन मानवता के रक्षक।

हम वन पर्वत, सागर मरुथल मे मानव की
विजय ध्वजा फहरायेंगे। इस वन प्रान्तर में
जहाँ बनैले पशुओ की है गुहा, वहाॅ हम
सेना शिविर बनायेगे निज, जहाँ खगो के
नीड मात्र हैं, वहाँ जनो के वास बनेंगे !
हमको सामूहिक जीवन की आवश्यकता
समतल मनुज बनाने को है बाध्य कर रही।
तभी तुम्हारे-से आदिम जन, युग जीवन के
नव स्पर्शो से विकसित, सस्कृत हो पायेंगे !

कवि

नि सशय, आदिम हूँ मैं !

कुछ स्वर

(दर्प से) हम चिर नवीन है !

स्त्री स्वर

नही, नही,—परिहास कर रहे हो तुम हमसे !
तुम कवि हो, तुम कलाकार हो। तुम युग-युग के
अभिशापित, शोषित जनगण के साथ रहोगे !
युग सकट मे उद्बोधन के गान छेडकर
तुम जनता को साहस दोगे, समबल दोगे !

कवि

अगर साथ रहने देंगे जनगण के नायक !!

स्त्री स्वर

देखो, तुम देखो इन हड्डी के ढाँचो को—

एक स्वर

वज्र बन चुके है दधीचियो के ये पजर !

स्त्री स्वर

देखो, नग्न क्षुधित मनुष्यता की छलना को,
रक्त क्षीण, निष्ठुर विषण्णता को जीवन की ! !
वर्तमान का भीषण उत्पीडन है इनको
निर्ममता से कुचल रहा ! यदि एक बार तुम
आँख खोलकर इन्हे देख लोगे जो सचमुच,
करुणा से विगलित उर हो, मर्माहत हो तुम
सहम उठोगे, हे फूलो के जग के वासी !

एक स्वर

और क्रोध से पागल हो जाओगे शायद
आदर्शों के मूर्ति - पूजको के इन कुत्सित
दुष्कर्मो को देख, घृणा से आँख फेरकर !
मृत प्रतिमाओ के पूजक जीवित जनता के
पूजक कभी नही हो सकते,—जीवन्मृत जो !

कवि

देख रहा हूँ, मैं लज्जा से गडा जा रहा !
कब से मेरे मन की आँखो के सम्मुख उठ
नाच रही है छायाएँ सक्रान्ति काल की !
भूखो के ककाल खडे चीत्कार कर रहे,
अवचेतन के प्रेत भर रहे अट्टहास है !
क्रूर, ह्रास-युग के लोभी असुरो से पीडित
मानवता कातर वन रोदन छोड, एक हो,
आज क्रुद्ध ललकार रही, हुकार भर रही !

(तुमुल वाद्य सगीत समवेत गान)

भूत के ककाल हैं हम,
क्रुद्ध रुद्ध कराल हैं हम !
कण्ठ से लिपटे त्रिशूली के
भयकर व्याल है हम !

मनुजता के प्रेत है हम
आज सब समवेत है हम,
बीज है हम, खेत है हम,
शक्ति अमिट विशाल हैं हम !

खड्ग है हम, ढाल हैं हम,
ज्वार से उत्ताल है हम,

रुद्र की दृग ज्वार है हम
धरणि की जयमाल हैं हम !

कुछ स्वर

मिथ्या है, सब मिथ्या जग मे आज चतुर्दिक्,
केवल सत्य मनुज के उर की घोर घृणा है !
मिथ्या नैतिकता, मिथ्या आदर्श है सकल,
जन पीडन शोषण के हित जो उद्भूत होते !
केवल सत्य विपमताएँ हैं, प्रतिहिंसा है,
केवल सत्य अतृप्त पिपासा है, तृष्णा है !!

उबल रहा है द्वेष गरल से जन-गण का मन,
भभक रहा है क्रोध अग्नि से मानव अन्तर,
फटने को है आज विकट ज्वाला का पर्वत,
थूकेगा वह, उगलेगा दाहक लपटो को,
और जला देगा छल झूठ कपट के जग को,
मानव उर की निर्ममता को, नृशंसता को,—
भस्मसात् कर देगा जग के दुःस्वप्नो को !

(विवर्तन सगीत)

कुछ स्वर

छायाएँ है, छायाएँ आदर्श भयानक,
छायाओ को कुचलेंगे हम, आभासो को
रौंदेंगे पाँवो के नीचे, युग - युग के मृत
सस्कारो को खोद, मिटा देंगे जन-मन से !

(उत्तेजना-द्योतक संगीत)

कवि

इसीलिए तुमने सम्मानित जीवन श्रम को
छोड, अहेरी जीवन फिर स्वीकार किया है ! —
देख रहा हूँ, आज सगठित मन युग-युग का
सामूहिक जन वर्वरता मे विखर रहा है,
आदर्शो के स्वर्ग विचुम्बी शिखर टूटकर
भू लुण्ठित हो रहे विवर्तन की आँधी मे,
और नाश के घने अँधेरे के उतने ही
गहरे गर्तो मे गिर, धरती के अन्तर को
क्षत विक्षत कर रहे, चूर्ण हो !

जीवन की वे
पावन, मोहित, निभृत घाटियाँ, जो चिर करुणा,
ममता के स्वर्णिम प्रकाश से भरी हुई थी,
जहाँ सभ्यता का क्रन्दन न पहुँच पाया था,
पद मर्दित हो रही आज वे अविश्वास के
प्रतिहिंसा के दैत्यो के निर्मम चरणो से !!

मानव की निर्दयता उनके भीतर घुसकर
बोल रही तोपो के मुख से विकट नाद कर ! !
भले-बुरे, काले सफेद औ' सत्य झूठ के
सभी मान इस सतत बढ रही अँधियाली के
प्रलय ज्वार मे डूब रहे है किमाकार हो !

(विप्लवसूचक वाद्य सगीत)

एकाकार हुए जाते है पाप पुण्य सब,—
मानव के अन्तरव्यापी घन अन्धकार से
घृणा द्वेष, अन्याय कपट, छल स्पर्धा हिंसा
आज पुकार रहे चिल्लाकर—बाह्य सगठन
मात्र सत्य है ! बाह्य सगठन चरम लक्ष्य है !
बाह्य आसुरी एका ही सब कुछ है जग मे,
अन्तर्जगत, हृदय का एका,—केवल भ्रम है !
अन्तर्मुख सगठन पलायन, बहलावा है !
सस्कृति ? वर्गो के हित साधन की दासी है !
युग अपनी मुट्ठी मे अणु सहार लिये है ! !

विज्ञापन करता विनाश भीषण शब्दो मे !
हिल-हिल उठते आज चेतना भुवन मनुज की
भावी की आशका से ! अह, आज मनुज का
आत्म प्रतारक द्वेष बन गया विश्व विनाशक ! !

कुछ स्वर

कायर हो तुम कायर ! जो उपदेश दे रहे
नगे - भूखे लोगो को अध्यात्मवाद का !
कलाकार तुम नही, तुम्हारे दुर्बल उर मे
वज्र घोष विद्रोह नही युग की प्रतिभा का !

खौल न उठता रक्त तुम्हारा घृणा क्रोध से
शोषित पीडित मानवता की नग्न व्यथा पर !
दया द्रवित भी नही दिखायी देते हो तुम ! !
जग जीवन से विरत, निरत फूलो के वन मे,
स्वप्न लोक मे रहते हो तुम आत्मतोष के !

साथ नही दोगे तुम जन का युग सकट मे
रिक्त कला, सुन्दरता के थोथे आराधक ! !
धिक् तुमको ! यह व्यक्ति अह जन पथ कण्टक है!

कवि

किन्तु हाय, यह सन्ध अह दुर्गम पर्वत है ! !
भीतर भी हैं जनगण, भीतर ही जन का मन,
भीतर भी है सूक्ष्म परिस्थितियाँ जीवन की,
भीतर ही रे मानव, भीतर ही सच्चा जग,
जाति वर्ग श्रेणी मे नही विभाजित है जो,

उसे नव्य संगठित, पूर्ण सक्रिय, चेतन कर
वहिर्जगत मे स्थापित करना है मानव को!

कुछ स्वर

चलो, बढो हे भूजन, असिधारा के पथ पर,
सागर को मथने, पर्वत का शीश झुकाने,—
विजय ध्वजा स्थापित करने देवो के सिर पर!

रौदेगे हम परियो की चापो से गुजित
इस वन फूलो की घाटी को! बिखरा देंगे
इसकी स्वप्न भरी पखड़ियाँ धरा धूल मे!
तोड-मोड इसकी शोभा पल्लव शाखाएँ
लूटेगे रस के मटको-से भरे फलो को,
जो खगोल से, चेतन भुवनो से लटके है!

ध्वस भ्रश कर देगे हम इस आदर्शों की
माया मोहक पंचवटी को, भटकाती जो
मानव मन को नित नव स्वर्ण मृगो के पीछे!
वहिर्जगत की लौहमुष्टि फिर अन्तर जग का
नव निर्माण करेगी जीवित आघातो से!...
नही रहेगा बाँस, बजेगी तब क्या वंशी ?
हम युग विद्रोही है, आज हमारी इच्छा
सत्य न्याय की उद्घोषक है!—शेष झूठ है!

(प्रयाण सगीत)

चलो तात, बढो भ्रात
गौरव के गिरे शिखर
जन भू हो नव उर्वर,
जडता पर, रहो निडर,
करो घात, करो घात,
करो घात!

(तानपूरे के स्वर)

कवि

धरती का निस्तल अवचेतन उमड रहा है
बर्बर युग के आवेशो से आन्दोलित हो,
जग जीवन की क्रूर विषमताओ मे फिर से
नव युग का मासल समत्व भरने जन वाछित,—
मानव उर की मोह दम्भ की वज्रशिला पर
शत निष्ठुर प्राकृत प्रहार कर प्रतिहिंसा के!

विस्मित हूँ मैं! आज उपेक्षित जन धरणी का
भू विस्तृत समतल जीवन जब विहँस चतुर्दिक्
प्रथम बार पल्लवित, लोक सगठित हो रहा

भौतिक स्तर पर, दैन्य दुःख से अखिल मुक्त हो :
छूट रहा जब करुण पराभव संख्याओ का
विगत युगो की निठुर नियति से भाल पर लिखित,—

प्रथम वार जव युग-युग का भू कल्मप कर्दम
आज धुल रहा प्रणत रीढ जनगण के मुख से,
खड़े हो रहे जो अगणित पैरो पर फिर से
दैन्य गर्त से निकल, असंख्य भुजाएँ फैला,
अँगडाई भरते प्रचण्ड जीवन लपटो-से,
अग्नि शस्य-से लहरा भू पर प्राण प्ररोहित,—
ऐसे युग मे एक ऊर्ध्वदिक् दिव्य सचरण
जन्म ले रहा अन्तरतम मे युग मानव के,
निज अपूर्व चेतना शिखा से आलोकित कर
जीवन मन की अतल गहनताओ का वैभव,
सूक्ष्म प्रसारो की अतुलित दिग्व्यापी शोभा,—
मानव मन को ज्योति चमत्कृत कर, जीवन का
स्वर्गिक रूपान्तर कर, स्वर्णिम ऊँचाई से।
देख रहा मैं, स्वर्ग क्षितिज से उतर रही है
नव जीवन शोभा की प्रतिमा आभा देही,
नव सस्कृति की अन्त स्मित किरणो से मण्डित,—
जो वहिरन्तर ऐक्य साम्य मानव जीवन मे
पुन प्रतिष्ठित कर देगी, ऊर्ध्वग, भू व्यापक !
···किन्तु कौन तुम, मौन ज्योति विद्रवित जलद-से
चिन्तन की मुद्रा मे, यहाँ खडे हो कैसे ?
छोड़ साथियो को अपने,—किस अभिप्राय से ?

वैज्ञानिक

किस आशा से ? वैज्ञानिक हूँ मैं। इतना ही
मेरा परिचय। मैंने ही चचल विद्युत् को
वाष्प रश्मि को वाँध, वनाया युग मानव की
क्रीता दासी। मैंने अणु का गर्व चूर्ण कर
भूत प्रकृति की मूल शक्ति को किया निछावर
मानव के चरणो पर। आज मनुज स्वामी है
सिन्धु गगन का, देशकाल का—निखिल प्रकृति का !
और अनेको चमत्कार मैंने इस युग में
दिखलाये हैं यन्त्रो के वल से मनुष्य को,
जो पिछले युग के मन्त्रो-तन्त्रो के छल से
कही सत्य, विस्मयकारी है,—उन्हे गिनाना
आत्म प्रशसा कहलायेगा, पातक है जो।

कवि

परिचित हूँ मैं सुहृद्, तुम्हारे अमर दान से,
व्याप्त तुम्हारी शुभ्र कीर्ति है दशो दिशा मे,

रूपान्तर कर दिया मनुज जीवन का तुमने
भूत परिस्थितियो मे उसकी महत् क्रान्ति कर !

किन्तु पूछता हूँ मैं तुमसे, आज मनुज क्या
स्वामी है या दास प्रकृति का ? वह विद्युत् पर
शासन करता है या विद्युत् वाष्प यन्त्र ही
अधिकृत उसे किये हैं ?—हाय, मनुज का अन्तर
चूर्ण हो रहा आज दर्प से, बहिर्जगत की
अन्ध वीथियो मे शत खोकर, लक्ष्य भ्रष्ट हो !
हृदय हीन कर दिया उसे जड भौतिकता ने ।।
आज प्रकृति की मूल शक्ति देकर, मानव को
महानाश के पथ पर तुमने छोड दिया है ।।

वैज्ञानिक

स्यात् बदल जाती जग की कटु अर्थ व्यवस्था,
बाह्य विषमताएँ पट जाती युग जीवन की :
स्वार्थ लोभ के पैने पजो से मानव पशु
मानव का मुख नही नोचता रक्त सिक्त कर ! —
लौह अस्थि पजर मे भीषण यान्त्रिक युग के
मनुज हृदय की धडकन पुन: सुनायी पडती !
क्रूर वाष्प विद्युत् के दानव मानवीय बन
शोषक से सेवक बन जाते जन समाज के !

कवि

यदि अन्त सगठित आज हो जाता युग मन,
मनुज हृदय का परिवर्तन सार्थक हो सकता,
तो आदिम सस्कार उभडते नही धरा के,
युग जीवन का स्वर्णिम रूपान्तर हो उठता !
हिम फुहार-सी बरस सुनहली शान्ति चतुर्दिक्
शुभ्र हास्य से अभिषेकित करती भू प्रागण,
जीवन मन के मूल्य निखिल अन्त परिणत हो
व्यापक, उर स्पर्शी बन जाते स्वर्ग क्षितिज छू !
अन्तर् जीवन की ऊर्ध्वग महिमा से मण्डित
नव चेतन हो उठती जड धरणी सुर प्रहसित !

वैज्ञानिक

अगर मुक्त हो सकती रचना शक्ति जनो की
समुचित वितरण हो पाता जीवनोपाय का,
सामाजिक सन्तुलन ग्रहण कर लेता भू श्रम
बँट जाता यन्त्रो का बल आर्थिक समत्व मे,—
स्वार्थ लोभ, अन्याय द्वेष स्पर्धा उठ जाते
भूव्यापी जन रक्तपात टल जाता युग का,
मानव के सयुक्त कर्म से स्वर्णिम चेतन
युग प्रभात हँस उठता भू तम को निरस्त कर !

कवि

और साथ ही अगर ऊर्ध्व चेता बन जाता
समदिक् मानव, अतिक्रम कर मन की सीमाएँ,
मिट जाते खण्डित भू जीवन के विरोध सब,
भौतिक नैतिक मान नियोजित होते युगपत्।
मानवीय सन्तुलन ग्रहण कर लेता जन युग,
यन्त्रो की जलती साँसे ठण्ढी पड जाती।
मनुज चेतना के पारसमणि स्निग्ध स्पर्श से
लोहे की निर्ममता स्वर्ण द्रवित हो उठती।

नयी चेतना के प्रकाश मे केन्द्रित मानव
पुन सत्य का मुख विलोकता नये रूप से,
नयी दृष्टि मिल जाती उसको जीवन के प्रति,
मिट जाती सब विगत युगो की घृणित क्षुद्रता।
बाह्य रुद्ध बौनेपन मे निज ऊपर उठकर
ऊर्ध्व-मुक्त, अन्तश्चेतन बन जाता जन-मन,
अन्त स्थित, अन्त स्मित हो, अन्त कृतार्थ हो।

वैज्ञानिक

यही सोचता हूँ मैं भी अब। आज मुझे है
महत् प्रेरणा मिली·· मनुज अन्तर्जीवी है।
स्पष्ट देखता हूँ मैं, अन्तर का विधान ही
मानव है। अन्त सयोजित, ऊर्ध्व समन्वित।
आज मनुज मर गया। ···पराजित हो भीतर से
दौड रहा है वह बाहर, व्यक्तित्व हीनहो!
व्यक्तिहीन सामाजिकता निर्जीव ढेर है।

ढेर हो गया मानव का मन, यान्त्रिकता से
चूर्ण हो गया मनुज हृदय। वह अब समूह है।
यन्त्रो से चालित इच्छाओ का समूह है,
घृणा, द्वेष, स्पर्धा, तृष्णाओ का समूह है।
नाटकीय कटुता, निर्ममता का समूह है,
अवचेतन की अन्ध वासना का समूह है।।

महत् व्यक्ति चाहिए आज सामूहिक युग मे,—
दुर्निवार कामना किन्तु है मुक्त हो उठी,
रौंद रही जो मानव के मिथ्याभिमान को।
आज निखिल विज्ञान शक्ति मानव हाथो मे
विश्व प्रलय कारिणी बन गयी, लोक विनाशक
कापालिक बन गया मनुज है, जीवन बलि प्रिय,
मानव शव का पूजक, साधक भू श्मशान का।।

कवि

यद्यपि अब भी लसरो की रुपहली पायलें
बजती छम, खेतो मे हसमुख हरियाली

सोना उगला करती है, नव मुग्धाओं की
चल चितवन से स्वर्ग झाँकता, नव शिशुओं को
घेर स्वर्ग की परियाँ मँडराती लुकछिपकर,—
किन्तु चतुर्दिक् गरज रहे युग संघर्षण में,
हिंस्र सभ्यता की हुंकारों में, जीवन की
मोहकता सब बिखर गयी है !... मानस सूना,
जग फीका लगता है मरुस्थल-सा निरर्थ, मृत,—
जीवन इच्छा तुच्छ, रूप चल मृग तृष्णा-सा,
आशा का इंगित निष्प्रभ, भूतल मरघट-सा !!

(आशाप्रद वाद्य संगीत)

अमृत पुत्र है पर मानव,—है व्यर्थ निराशा !
मांस पेशियाँ आज पर्वताकार खड़ी हों
भले रोकती हों अन्तः केन्द्रित प्रकाश को,
फूट पड़ेगा वह स्वर्णिम निर्झर वन उर से !

पतझर आया है यह फूलों के प्रदेश में,—
झरने दो मानस के मुरझाये वैभव को,
अरुण किसलयों से कलियों के अवगुण्ठन से
झाँक रहा फिर नवल रुपहला आशा का जग !

फिर से बहिरन्तर संयोजित होगा मानव,
पुनः ज्ञान विज्ञान समन्वित होगा जीवन !
व्यक्ति समाज परस्पर अन्योन्याश्रित होकर
बढते जायेंगे विकास के स्वर्णिम पथ पर !
बहिर्जगत के शिखर ज्वार पर आरोहण कर
नव्य चेतना उतरेगी किरणों से मण्डित !
सत्य अहिंसा होंगे भावी के पथ दर्शक,
विचरेगी मानवता फूलों के प्रदेश में
नव संस्कृति की श्री शोभा सौरभ से पोषित !

(हर्षसूचक वाद्य संगीत)

वैज्ञानिक

स्वप्न नहीं है यह, निःसंशय मूर्त सत्य है !
मनुज सदा अपने को अतिक्रम कर, अन्तर्मुख
आदर्शों के नित नूतन ऊर्ध्वग प्रकाश को
नवल वास्तविकता में बाँधेगा जीवन की,
मानवीय होगी निश्चय वास्तविकता वही !

कवि

तुमसे यह सुनकर कृतकार्य हुआ अब जीवन !
आओ, हम दोनों बहिरन्तर के प्रतिनिधि मिल
अमृत चेतना को इस फूलों के प्रदेश की
नव युग जीवन में परिणत कर, सत्य बनायें !

(जनरव : रणवाद्य)

देखो, लौट रहे है जनगण श्रान्त क्लान्त मन,
शोणित पंकिल तन,—धरणी को रक्त पूत कर !
आज प्रार्थना जनश्रम मिलकर ज्योति शक्ति से
शान्ति धाम, जन मगल ग्राम बनायें भू को !

(समवेत गीत)

मंगलमय पूर्ण काम
जन-मन का लो प्रमाण !

द्वेष रहित हो भू मन
शोभा स्मित जन जीवन
सृजन स्वप्न भरे नयन,
कर्म जनित हो विराम !

विश्व शान्ति बने ध्येय,
श्रेय ग्रथित रहे प्रेय,
लोक ऐक्य हो अजेय,
पावन जनवास, ग्राम !

शान्त नील विश्व गगन,
शान्त हरित सिन्धु गहन
शान्त नगर पर्वत वन,
जन भू हो शान्ति धाम !

(५ मार्च, १९५१)

उत्तर शती

विंश शती का विश्व सभ्यता के इतिहास मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा। प्रस्तुत रूपक में उसके पूर्वार्ध के संघर्ष-संग्राम का सक्षिप्त निदर्शन तथा उत्तरार्ध के आशा कल्याणप्रद क्रम-विकास की ओर सकेत किया गया है। उत्तर शती मानव जगत मे नवीन स्वर्णयुग का समारम्भ कर सकेगी, इसमे सन्देह नही।

पुरुष स्वर
स्त्री स्वर
सन् १९५१
जनगण

(समवेत गान)

कौन कौन तुम निष्ठुर हासिनि ?
महाकाल के मुक्त वक्ष पर
नग्न नृत्य करती उन्मादिनि !

दक्षिण कर पीयूष पात्र स्मित
वाम हस्त विष ज्वाल विकम्पित,
विचर रही निर्मम अबाध तुम
विश्व विषादिनि, लोक प्रसादिनि !

टूट रहे युग - युग के बन्धन
गिरते मुकुट महल सिंहासन,
रणन भनन बज - बज उठता रण,
जय जन-मन जीवन उल्लासिनि !
सिन्धु क्षितिज अब रक्त तरंगित
अरुणोदय होने को निश्चित,
जय, विनाश के अतल गर्भ से
नव युग जीवन ज्वार विकासिनि !

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

विंश शती यह, अपने वज्र मुखर चरणो से
रण झंकृत कर युग के जीवन का कण्टक पथ,
दिग् घोषित करती है अपना महिम आगमन
शत-शत तोपो के गर्जन से अभिनन्दित हो !

(तुमुल वाद्य ध्वनि)

बोऽर युद्ध के साथ धरा जन के जीवन मे
कर प्रवेश, भर दारुण क्रन्दन, भीषण गर्जन,
प्रलय बलाहक-सी छायी यह जग के नभ मे
तडित् कटाक्षो से विदीर्ण कर विश्व दिगन्तर !

महासमर छिड चुके धरा पर हैं तब से दो,
रक्त तरंगित कर जन के जीवन का सागर,

रुधिर पंक से रँग धरती का आहत तन-मन,
दैन्य दु.ख ईर्ष्या स्पर्धा के रक्त बीज बो !
मँडराते रण वायु यान मन्थित कर अम्बर
भीम काय दानव-से फैला मृत्यु पख-निज,
हरित भरित धरणी के जन उर्वर अचल में
बरसाकर पावक प्रचण्ड खर नरक कुण्ड का !
किमाकार चल पर्वत शिखरो से टकराकर
तुमुल नाद से चीर गगन की नील शान्ति को
घिरते विद्युत् घन विनाश के, युग के नभ मे,
महामरण की छाया डाल धरा के मुख पर !

(करुण भीत वाद्य ध्वनि)

स्त्री स्वर

बढता जाता सघर्षण पर कटु सघर्षण,
उद्वेलित वारिधि-सा विंश शती का मानस
आलोडित हो युग आवेशो के शिखरो मे
डुबा रहा भू के तट, नव जीवन प्लावन भर !

निखर रही है नयी धरित्री युग कर्दम से
निखर रहे हैं नये देश प्राणो से मुखरित,
लोक साम्य की महत् प्रेरणा से आन्दोलित
उमड रही जन मानवता जीवन कल्लोलित !

(हर्षसूचक वाद्य ध्वनि)

जूझ रहे है लौह सगठन युग जड़ता को
बज्र मुष्टियो के प्रहार से जागृत करने,
नव शोणित से वैर-स्नात करने भू का मुख
परिवर्तित करने जग के कटु मानचित्र को !

टकराती हैं नव्य चेतना की हिल्लोलें
युग मन की निश्चेष्ट बधिर पाषाण शिला पर,
हाहाकारो से, जयघोषो से समुच्छ्वसित
विश्व क्रान्ति की ओर सतत आरोहण करती !

(द्रुत तीव्र वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

रक्त क्रान्ति के शोणित के सागर से उठकर
चमक रहा है लोहिताक्ष नक्षत्र नवोदित
युग के नभ मे अंगारक-सा महत् महोज्ज्वल,
भूमि पुत्रवत्, मातृधरा के वैभव से स्मित,—
युग-युग के शोषित जनगण का स्वर्ग भूतिप्रद !
नव्य लोक वह, जिसके श्रेणि मुक्त समतल मे
विचरण करती वर्गहीन मानवता निर्भय,
नव शोणित से स्पन्दित, नव शिक्षा से जागृत,

विगत विभेदो, घृणित निषेधो से विमुक्त मन,—
खीच धरा के प्राणो से नव युग का यौवन
निर्मित करती वह नव भू जीवन, जग सस्कृति,
अभिनव आशाऽकाक्षाओ, ध्येयो से प्रेरित !

तरुण रक्त मे उसके अभी नही आ पाया
वयस सुलभ, अनुभूति गहन सन्तुलन ज्ञान का,
गत युग के सस्कार नही मिट सके मनस् के,
आवेगो की नयी धरा वह, ऊष्ण, वहिर्मुख,—
जिसे चाहिए जीवन मन्थन, अन्तर्दर्शन !

फैल रही है उसकी आभा, जग जीवन के
जाति ग्रथित तम को सतरंगो मे रजित कर,
विजयी अरुणध्वजा मे फहराता प्रभात नव,
स्मित प्रकाश की किरण विखरा जन प्रागण मे!
वहाँ सभ्यता मध्य युगो की, मध्य वर्ग की
रूढि रीतियो के पाशो से मोह मुक्त हो
जीवन पट वुन रही विशद जन मानवता का
नव शोभा सुन्दरता, नव गौरव गरिमा के
स्वर्ण रजत ताने वाने से,—नव मूल्याकित !
अभिवादन इस भव्य देश का, वृद्ध जगत के
साथ वढे वह, विश्व शान्ति का पोपक वनकर !

स्त्री स्वर

वयस शुभ्र हिम शिखरो के उस पार, पडोसी
ज्ञान वृद्ध प्राचीन चीन की महाभूमि भी
युग परिवर्तन की करवट ले, नव्य राष्ट्र मे
उधर लोक सगठित हो रही, तरुण रुधिर स्मित,
नव जीवन से गुजित नव प्राणो से मुखरित,—
रक्त जिह्व ध्वज फहरा जन आशाऽकाक्षा का,
युग प्रभात सूचक ! जाग्रत् एशिया अब महत् !

गाते गरज-गरज जनगण इस भूमि खण्ड के
वश प्ररोहो-से उठ भू का वक्ष चीरते,—
अग्नि शालि से लहरा जीवन की लपटो मे,—
जय हो जनता की जय, जय मानवता की जय !

(जन गीत)

युग प्रभात जन लाये, जन लाये !
सिन्धु तरगो गिरि शृगो पर
विजये ध्वजा फहरायेऽ !

वढते अगणित पग जब मग पर
उठते अगणित भुज जब ऊपर,
देते पथ मरु पर्वत सागर,
सादर शीश नवाये !

मिटा युगों का दैन्य त्रास तम
कटा निखिल मन का मोहक भ्रम
जग जीवन गौरव जन का श्रम
नव प्रकाश दिखलाये !'

आज धरा श्रम सकल एक हो
मात्र दासता के बन्धन खो,
अग्नि बीज नव जीवन के बो
स्वर्ण शस्य बन छाये, लहराये !

(तानपूरे के स्वर)

स्त्री स्वर

भौगोलिक ही नहीं, सांस्कृतिक धर्म बन्धु भी
भारत का जो रहा पुरातन, अक्षय करुणा
ममता के स्वर्णिम सूत्रों में बँधा चिरन्तन :
भारत के अन्तः प्रकाश से ज्योतिर्मज्जित
जिसके शिखर गहन पथ विपणि हुए चिर पावन,
महाबोधि की प्रीति द्रवित संस्कृत वाणी से
जिसके पुर गृह द्वार रहे नित अन्तर्मुखरित,
ऐसे निज आत्मीय सखा का पुन. हृदय से
अभिवादन करते भारत जन, उससे नूतन
युग मैत्री, सद्भाव, सन्धि स्थापित करने को
समुल्लसित मन,—सुहृद् अभ्युदय के गौरव से
उन्नत मस्तक !—

बन्धन मुक्त, स्वतन्त्र,—आज वे
लोक क्रान्ति के लिए स्वत भी जाग्रत्, उद्यत !
गौतम से गांधी तक सत्य अहिंसा का जो
रहे अमर सन्देश सुनाते क्षुधित जगत को,
मानव जीवन मन में अन्तःक्रान्ति के लिए
मौन प्रयासी, विश्व शान्ति के चिर अभिलाषी
भारत के सुत, नव्य चेतना से अन्त स्मित,
नव मानवता के स्वप्नों से अपलक लोचन
जाग रहे, विस्मृत युग के स्वर्णिम खण्डहर-से,
भू जीवन की नवल कल्पना से उन्मेषित
स्वर्गिक पावक की लपटों-से, लोक यज्ञ हित !

(जागरण वाद्य संगीत)

पुरुष स्वर

यह सच है, जिस अर्थ भित्ति पर विश्व सभ्यता
आज खड़ी है, बाधक है वह जन विकास की,
उसमें दीर्घ अपेक्षित हैं व्यापक परिवर्तन
भू मंगल हित ! धनिक श्रमिक के बीच भयंकर
जो शोणित पंकिल खायी है वर्ग भेद की

उसे पाटना है इस युग को आत्म त्याग से
सहिष्णुता, शिक्षा समत्व से,—और नही तो,
सत्याग्रह से, शत-शत निर्भय बलिदानो से!
जिससे भू का रक्त क्षीण शोषित विषण्ण मुख
फिर प्रसन्न, जीवन मासल हो, युग शोभन हो!

उत्तर शती अवश्य यन्त्र युग के विप्लव मे
सामजस्य नया लायेगी जन-मन वाछित,
जिससे शिक्षा, सस्कृति, सामूहिक विकास का
पथ प्रशस्त हो जायेगा युग मानव के हित!

(घण्टो और वाद्यो की करुण ध्वनि)

स्त्री स्वर

अर्धशती अब बीत रही है, घनन् घनन् घन्,
घड़ियालो का क्रन्दन उसको बिदा दे रहा!
अर्धरात्रि की नीरवता को चीर झनन झन
झिल्ली का कातर स्वन उससे विदा ले रहा!
शत-शत आहत इच्छाएँ, असफल तृष्णाएँ
उसके चिर कुण्ठित अन्तर मे मौन सो रही,
शत मुकुलित आशाएँ, अभिनव अभिलाषाएँ
भावी के स्वप्निल पलको मे जन्म ले रही!

(मन्द्र वाद्य ध्वनि)

स्त्री-पुरुष स्वर

विदा, विदा, हे पूर्वशती, गत समरो की स्मृति
मिटे तुम्हारे सँग मन से, भीषण छायाकृति!
मुक्त रुपहले पख खोल, बरसा स्वर्णिम स्मिति
विचरे भू पर शान्ति, शान्तिप्रिय हो जन ससृति!

(द्रुत वाद्य ध्वनि)

लोक क्रान्ति की अग्रदूतिके, तुम झंझा पर
चढकर आयी, मन्थित करने जीवन सागर!
भूमिकम्प-सी, ध्वस भ्रश, गर्जन-तर्जन भर
धूलिसात् कर गयी युगो के सौध स्मृति शिखर!
स्वस्ति, स्वस्ति! अब नव निर्माण करें भू के जन
ले जाओ अपने सँग जग का दारुण रोदन!

(गभीर वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

इन पचास वर्षो के निबिड कुहासे से कढ़
सन् इक्यावन मौन बढ रहा धीरे सन्मुख!
अर्धपक्व केशो के उसके प्रौढ भाल पर
चिन्तन की रेखा है अकित, नवल क्षितिज-सी!
रजत घण्टियो की कल ध्वनि स्वर्णिम आशा के
पंखो मे उड अभिनन्दन करती है उसका!

(घण्टियो की हर्षध्वनि)

स्त्री-पुरुष स्वर

स्वागत नूतन वर्ष, शिखर तुम विंश शती के,
लाओ नूतन हर्ष, नवागन्तुक जगती के!
कब से अपलक नयन प्रतीक्षा करते भू जन,
विश्व शान्ति मे लोक क्रान्ति हो परिणत नूतन!
भर जाओ स्वर्णिम समत्व जग जीवन रण मे,
नव जीवन के सृजन स्वप्न जनगण के मन मे!
लहरो के शिखरो मे उठती जीवन आशा,
गिरि शृगो पर चढती जन-भू की अभिलाषा!
खोज रही गत प्रतिध्वनियाँ नव मन की भाषा,
जन मानवता जीवन की नूतन परिभाषा!
आओ, जन सारथि बन, कर्दम स्तम्भित युग रथ,
पथ बाधाएँ लाँघ, करो हे पूर्ण मनोरथ!

(आशाप्रद वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

रवि के चारो ओर धरा के पूर्ण पचदश
सक्रमणो के बाद वर्ष नव उदित हो रहा
विश्व मच पर, पार कण्टकित कर आधा पथ,
अनुभव गहन हृदय मन ले सागर-सा निस्तल!
नव आशा की किरणो से स्मित आनन श्री ले,
सोच रहा वह उच्च स्वरो मे जल प्रपात-सा—

(गभीर वाद्य ध्वनि)

सन् इक्यावन

भाग्यवान् हूँ मैं! विराट् इस विंश शती के
चिर महान युग मे जो नूतन जन्म ग्रहण कर
पुन आ सका हूँ अब सन् इक्यावन बनकर!
विश्व सभ्यता आज नवल इतिहास रच रही,
जन सस्कृति का आज धवल अध्याय खुल रहा!
कितने ही परिवर्तन आये भू जीवन मे,
कितने ही सघर्ष और सग्राम छिड चुके,
बर्बर युग से आज यन्त्र युग मे मानवता
लडती-भिडती अन्धकार मे राह खोजती,
सागर - सी गर्जन - तर्जन उद्वेलन भरती
पहुँच रही अब ऐसे व्यापक सगम स्थल पर
जहाँ उसे निज पिछले जीवन का मन्थन कर
पिछले आदर्शों मूल्यो का विश्लेषण कर
लोक सभ्यता निर्मित करनी है भू विस्तृत,
विविध विगत सस्कृतियो का कर महत् समन्वय!

(प्रगति सूचकवाद्य संगीत)

महाभाग हूँ मैं ! महान् है विंश शती यह !
धन्य धरा जीवी युग के, जिनके कन्धो पर
भावी मानवता का स्वर्णिम भार धरा है !
वृहद् ज्ञान विज्ञान किया सचय इस युग ने,
वाष्प तडित्, वहु रश्मि शक्ति इसके इगित पर
नाच रही है,—आज महत् अणु सिद्धि प्राप्त कर
उसने मौलिक भूत शक्ति का स्रोत पा लिया ·
विजयी हुआ मनुज का मन जड़ भूत प्रकृति पर,
आज अनुचरी बनी स्वामिनी मनुज नियति की !

(विजय सगीत)

भू रचना का स्वर्णिम युग हो रहा अवतरित
पुन· विश्व प्रागण मे कब से लोक अपेक्षित !
आज मनुज को खण्ड युगो से ऊपर उठकर
रूढि रीति गत आदर्शो के ककालो को
पद लुण्ठित कर, युग वैभव की सुदृढ भित्ति पर
मनुष्यत्व के व्यापक तत्वो से नव जीवन
नव सस्कृति निर्मित करनी है भू जन के हित !
युग-युग से कलुषित भू का तन भाव-स्नात कर
वेष्टित करना है उसको नव श्री शोभा में
जीवन के मन के गौरव मे आत्म द्रवित कर !
नव्य चेतना के आलिगन मे बँध जनगण
जिससे फिर सगठित हो सकें वाहर भीतर :
गूंज उठे सहार सृजन का गीत मुक्त स्वर—

(समवेत गान)

झरें, झरें
जीर्ण शीर्ण विश्व पर्ण
चिर विदीर्ण चिर विवर्ण
नव युग के प्रागण मे
मरें, मरें !

अर्धशती रही वीत
भावी मे लय अतीत,
दैन्य ताप, रक्त पात
हरे, हरे !

हँसता जीवन वसन्त
कुसुमित जग के दिगन्त,
जन हित वैभव अनन्त
भरें, भरें !

(उद्बोधन सगीत)

कौन सुनेगा पर मेरे ये तूती के स्वर
इस भीषण तर्जन गर्जन, कटु चीत्कारो के
निर्मम युग मे, छाया चारो ओर जहाँ है
भय, सशय, नैराश्य, विषाद, उपेक्षा, निन्दा
ईर्ष्या, स्पर्धा, अहकार,—खर लौह शूल-सा!
देख चुका हूँ अर्धशती, सक्रमण कर चुका
वर्ष पचदश, दु सह युग परिवेश से व्यथित,
किसी तरह मैं! सुहृदो के बाने मे मुझसे
मिले अनेको लोग, देश, भू राष्ट्र प्रतिष्ठित,
जन सस्थाएँ, लोक सघ बहु, व्यक्ति कनक घट,—
आत्म वचना, द्वेष, कलह, स्वार्थो से पीडित
पर उन्नति से क्षुब्ध, लुब्ध निज बौने बल पर!

कृमियो का उत्पात विटप ज्यो वट का सहता
झेले है मैंने निष्ठुर स्पर्धा के दशन
जीवन मन से कुण्ठित सूने अस्तित्वो के!
किन्तु नही मैं भूल सका, मैं महाकाल का
अमर पुत्र अवतरित हुआ हूँ सन्धिस्थल पर,
पार अनेको कर वन पर्वत मरुथल सागर
कण्टकमय, खन्दकमय,—झझावात तरगित,
विनय मूक मैं चलता निर्जन शान्ति मार्ग पर
क्रीडा निरत कलभ-सा, लाँघ शिखर युग के बहु!

कैसे तुमसे कहूँ, आज मैं अर्धशती के
ऊर्ध्व शिखर पर खडा मौन क्या सोच रहा हूँ!
उद्वेलित करती मुझको शत भाव तरगें,
प्रेरित करते रश्मि स्पर्श स्वप्नो के उर को!

याद मुझे आती फिर - फिर उस महापुरुष की,
अभी - अभी जो रजत शुभ्र चेतना शिखर-सा
धरती पर विचरा था स्वर्ग विभा से मण्डित,—
अपनी मगल स्मिति से दीपित करता भूपथ!
दैन्य दासता के युग - युग के बन्धन जिसने
भारत के काटे दुर्धर साम्राज्यवाद से
हँस-हँस लोहा ले, अजेय अस्त्रो-शस्त्रो की
हिंस्र शक्ति को किया पराजित सत्याग्रह से,
सौम्य अहिंसा के सामूहिक मंगल बल से!

एकाकी, निज आत्मशक्ति से जिसने निर्भय
भौतिकता यान्त्रिकता के दुर्मद असुरो को
किया निरस्त, जगत को दे सन्देश सत्य का,
शान्ति, अहिंसा का, श्रेयस्कर आत्मिक बल का!

आन्दोलित जन-युग दर्पण है मानव मन का,
शान्त उसे कर सकते केवल उस युग नर के
सत्य अहिंसा के आदर्श, अमर, युग पूरक!
सदाचार की रजत रश्मियो से शुभ मण्डित,
विनय त्याग नय शोभित, लोक कर्म अनुप्राणित,
सूर्य शुभ्र व्यक्तित्व एक दिन आत्म पुरुष का
भू मानस मे स्वत प्रतिष्ठित होगा निश्चय!
जीवन मन की क्षुधा तृषाओ की चीत्कारें,
अर्थ शक्तियो, सस्कृति धर्मो के सघर्षण
विश्व ऐक्य मे, लोक साम्य मे बँध जायेंगे
युग मानव मे सयोजित, व्यक्तित्ववान् हो!
धरती का विस्तार हुआ ही इस प्रकार है
कर सकते संहार नही भू जीवन का जन!
प्रेम मनुज को करना होगा भ्रातृ मनुज से,
देशो को देशो से, तन्त्रो को तन्त्रो से,
ईश्वर का आवास जगत मन्दिर है जन तन,
रूपान्तर होगा ही अधोमुखी तृष्णा का
अमृत चेतना मे, अन्तर्मुख, ऊर्ध्व गमन प्रिय!
गूँज रहे हैं अभी देश, पुर पथ, गिरि सागर
उस युग मानव की महिमा के जय निनाद से,
गूँज रही प्रतिध्वनियाँ कभी न मिटनेवाली!

(वाद्य संगीत जन गीत)

जय विराट् युग मानव जय, जय!
स्वर्गदूत तुम उतरे भू पर
आत्म तेज मे विचरे निर्भय!

सात्विकता के रजत शुभ्र तन
साधन तप के स्वर्ण शुभ्र मन,
नव युग जीवन के प्रतीक बन
विहँसे तुम, उर के अरुणोदय!

रक्त पक इस मर्त्य धरा पर
प्रथम वार लाये तुम निर्जर,
रक्त हीन रण जन श्रेयस्कर
जिससे हो भू स्वर्ग अभ्युदय!

(करुण वाद्य संगीत)

सन् इक्यावन

हा दुर्दैव, अतीत कथा-सी अर्धशती अब
हुई व्यतीत, बनी इतिहास! किन्तु भू-मन का
उद्वेलन रुक सका नही! उच्छ्वसित सिन्धु-सा
पीट रहा मुख युग जीवन दारुण हाहा कर
मानव उर की वज्र दम्भ पाषाण शिला पर!

उतर नही पा रही जनो मे नव्य चेतना
भू रचना के उर्वर स्वप्नो से उद्दीपित,
विजय नही पा सका मनुज निज भौतिक मद पर
राष्ट्र वर्ग के, जाति वर्ण के रिक्त गर्व पर ! !
विश शती का महाज्ञान विज्ञान प्राप्त कर
महानाश के अन्ध गर्त की ओर सभ्यता
आज बढ रही हृदय शून्य हो, भ्रमित बुद्धि हो !
तर्को वादो वर्गो के भेदो मे खण्डित,
यन्त्रो से शोपित, जन तन्त्रो मे आन्दोलित,
क्षुधा तृषा श्रम पीडित, तमस अविद्या मूर्छित,
रेंग रहा युग भग्न रीढ पर आहत अहि-सा
घूम-घूम फिर घोर वृत्त मे महानाश के ! !
बँटा विरोधी शिविरो मे है मानव जीवन,
विश्व शक्तियो का है हुआ विभाजन निर्मम;—
लोक समन्वय, विश्व ऐक्य होगा ही निश्चय
उत्तरार्ध कर रहा प्रवेश नया युग जग मे !

(आशाप्रद वाद्य सगीत)

जिस युग ने है दिये मार्क्स-से भौतिक चिन्तक,
श्री अरविन्द सदृश द्रष्टा, भू स्वर्ग विधाता,
लेनिन गाधी-से जन अधिनायक, जो निश्चय
भिन्न परिस्थिति, भिन्न प्रकृति मानव पदार्थ पा,
निज क्षेत्रो के रहे विधायक, जन उन्नायक,—
नव युग के पतझर वसन्त-से, नव बीजो से
गर्भित, नव जीवन से मुकुलित,—महाप्राण मन!
जिस युग मे वैभव अपार सचित कोपो मे,
देश काल को किये ज्ञान विज्ञान हस्तगत,
वाहित करती विद्युत् क्षण मे निखिल विश्व मन
जिस युग मे, वह आत्म पराजय से क्यो पीडित ?
क्यो उसमे सन्तुलन नही आ सका अभी तक ?
क्या है इसका कारण ? क्यो अधिविश्व क्रान्ति है
छायी भू जीवन, युग मन मे ? शोचनीय यह !

(स्वप्नवाहक वाद्य सगीत)

देख रहा मैं मन क्षितिज मे युग स्वर्णोदय
मानव भावी का, अभिनव किरणो से दीपित,
विश शती का जनसुख-मासल उत्तर यौवन
निखर रहा निज भौतिक आध्यात्मिक वैभव मे !

धीरे - धीरे अर्थ व्यवस्था मे धरणी के
युग वाछित सन्तुलन आ रहा, भौतिक सत्ता
मानवीय बन, नव चेतन आकार धर रही !

पूँजीवादी लोक साम्यवादी देशो के
वातायन खुल रहे भाव विनिमय के व्यापक,
हृदय द्वार खुल रहे, विचारो से नव मुकुलित,
भू जीवन के आवागमन हेतु दिग् विस्तृत !
नव युग के आर्थिक नैतिक विधान के युगपत्
नव निर्मित हो जाने पर, नव मानवता की
स्वर्ण चेतना ध्वजा उड़ रही गिरि शिखरो पर,
सागर के उल्लसित वक्ष, प्रहसित अम्बर मे !

(विजय वाद्य सगीत)

दैन्य दु ख मिट गये, भर गये धरणी के व्रण,
आनन की धुल गयी कलुष कालिमा युगो की,
मानस वैभव से मुकुलित हो उठे दिगन्तर,
संस्कृति के सोपानो पर आरोहण करता
जनगण का मन, देवो का ऐश्वर्य बँटाने !—
समुल्लसित गाते नर - नारी भू जीवन के
विश्व प्रीति के गीत, भाव स्वप्नो से झंकृत !

(वाद्य संगीत तथा जन गीत)

निखर रहा मनुज नवल,
निखर रहा मनस् नवल !
जीवन के वारि चपल,
विहँस उठा हृदय कमल !
खुले रुद्ध लोक द्वार,
मुक्त वचन जन विचार,
वरस रही आर पार
ज्योति प्रीति धार तरल !
श्री हत गत सौध वाम,
कुसुमित जन वास ग्राम,
मानवता पूर्ण काम
युक्त धरणि हुई सकल !
नवल चेतना प्रकाश,
जीवन मन का विकास,
मानवीय भू निवास !
वरस रहा जन मगल !

(तानपूरे के स्वर)

सन् इक्यावन

उतर रही अधिमन के नभ से नव्य चेतना
स्वर्ण शुभ्र ऊषा-सी, जन मानस धरणी पर,
चीर रहे हैं रश्मि तीर शत ज्वाल स्पर्श से
भू जीवन के जड़ तम को, स्वर्णिम चेतन कर!

उतर रहे स्वर्दूतो-से स्मित पख खोलकर
नव आशा उल्लास, ज्योति सौन्दर्य, प्रीति सुख।
बरस रही है रजत मौन स्मित शान्ति चतुर्दिक्,
जन मगल, श्रद्धा विश्वास,—शुभ्र पावनता,
मानव भू पर,—देवो के आशीर्वाद-सी!
आज प्रसन्न हुआ घटवासी मानव ईश्वर
मानव कर्मो से, जग जीवन व्यापारो से।

(प्रसन्न गभीर वाद्य संगीत)

यह परिवर्तनशील जगत है लीला का स्थल
दिव्य चेतना का, जो अन्तरतम मे निवसित,
मन, जीवन, जड भूत अश है उसके निश्चय,—
वह सबमे है व्याप्त और सबसे है ऊपर।—
वाह्य उपकरण उपादान ये मात्र प्रकृति के
चिर विकास क्रम मे है, सभी परस्पर आश्रित,
एक दूसरे के पूरक, पोपक, उद्धारक।

जड चेतन की इस विराट् क्रीडा के स्वामी
मानव के घटवासी भी हैं रे नि संशय,
प्रस्तुत होता लोक-पात्र जब धारण के हित
अन्तस्तल से उठता ज्वार नवल वैभव का,
चेतन कर जो मन के जीवन के सक्रिय स्तर
मज्जित करता भूत सृष्टि को, नव कल्पित कर।
भूतो की अन्तर पुकार से सहज विद्रवित
उन्हे उठाता आत्मिक मन के सोपानो पर
अभिनव जीवन सम्बन्धो, मन के मानो मे
उन्हे पुनः परिवर्तित, परिवर्धित, विकसित कर।

धन्य अभेद्य रहस्य सृजन का। विग शती भी
महाकाल के अतल वक्ष स्पन्दन से प्रेरित
उठ उत्ताल क्षितिज चुम्बी भूधर तरग-सी,
प्लावित करती जीर्ण धरित्री के विषण्ण तट
जन युग की अद्भुत विराट् जीवन शोभा मे,—
सिन्धु-मग्न कर विगत युगो के मान चित्र को।

(युग परिवर्तन सगीत)

मगलमय हैं जीवन की केन्द्रीय चेतना,
जन मगल का धाम बने यह मानव धरणी।
सृजनशील हो मानव मन,—स्रष्टा निश्चय ही
निर्माता से है महान्, जो सूक्ष्म द्रव्य से
बुनता नव सौन्दर्य प्रीति आनन्द के वसन
मानव आत्मा के हित,—शिल्पी स्वर्ग का अमर।

सयोजित हो मानव के आदर्श कर्म नित,
सयोजित वाणी विचार आचरण जनो के,

अन्त सयोजित व्यक्तित्व बने मानव का,
श्री शोभा का अमर धाम हो मनुज लोक यह !

(मंगल सगीत समवेत गान)

मंगल, जन मगल हो!
मगल मय का निवास
मानव हृत् शतदल हो !

प्रीति ग्रथित हो जन-जन,
ज्योति द्रवित जनगण मन,
वैभव नत जन जीवन,
शोभा स्मित भूतल हो!

नारी नर हो समान
कर्म निरत, लोक प्राण,
जग को दें आत्म दान
जन हित जन श्रम फल हो!

शान्त हो समर प्रमाद,
शान्त रिक्त तर्कवाद,
जय जीवन हो निनाद,
मुखरित दिङ् मण्डल हो!

(३१ दिसम्बर, १९५०)

शुभ्र पुरुष

'शुभ्र पुरुष' महात्माजी के तप.पूत व्यक्तित्व का शुभ्र प्रतीक है। महात्माजी भारतीय चेतना के आधुनिकतम रजत संस्करण हैं। प्रस्तुत रूपक उनकी जन्मतिथि के अवसर पर लिखा गया था। यह जनगण मन अधिनायक गांधीजी के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति युग की विनम्र श्रद्धांजलि है।

स्त्री-पुरुष स्वर
जनगण

(उत्सव वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

राजहस भरते उडान शुचि शुभ्र चतुर्दिक्
श्वेत कमल की पखडियाँ बरसा जन पथ पर,
स्वर्णिम पखो की शत उज्ज्वल आभाओ से
नव स्वप्नो की दिव्य सृष्टि कर भू मानस मे।
विचरण करती व्योम कक्ष में सुर बालाएँ
ज्योत्स्ना का रुपहला रेशमी अचल फहरा,
हँसता शारद चन्द्र घनो के अन्तराल से
शुभ्र चेतना ज्वार उठा जीवन सागर मे।

रजत घण्टियाँ बजती अम्बर मे कलध्वनि भर
झरते अश्रुत स्वर ताराओ की वीणा से।
हिम शिखरो पर शशि किरणो की छायाएँ कँप
फहराती शत रग ग्रथित बन्दनवारो - सी।
आज चिर स्मरणीय दिवस है शुभ्र पुरुष की
वर्षगाँठ का धरती पर अवतरित हुआ जो
नव युग की आत्मा बनकर जन मगल के हित।
सदाचार के शुभ्र चरण धर जिसने भू को
फिर चिर पावन किया अमर पद चिह्नो से निज।
जन्मोत्सव है आज मनाते हर्षित सुर नर
विश्व प्रकृति के प्रागण मे स्मित पुष्प वृष्टि कर।
जय निनाद से मुखरित है जन भारत का नभ,
फहराता है मुक्त तिरगा रग तरगित,—
मगल गायन वादन से गुजित है भू तल।

(मगल वाद्य ध्वनि समवेत गान)

जय जय हे, युग मानव, जय हे।
स्वर्ग शिखर से विचरे भू पर
आत्मतेजमय तुम निर्भय हे।

कोटि जनो के कण्ठ गान बन
कोटि मनो के मर्म प्राण बन
जन जीवन प्रागण मे लाये
तुम नव अरुणोदय हे।

सत्य खोजने आये जग मे
स्वर्ग लुटाने जन के मग मे,
देवो का वल लाये सँग मे
जय चिर मंगलमय हे!
तप से पावन स्वर्ण शुभ्र तन
मत्य-शुभ्र सत्कर्म वचन मन,
स्वर्ग धरा का करने आये
शुभ्र पुरुष, परिणय हे!

(हर्ष वादन)

स्त्री स्वर

पराधीन थी सदियों से जब स्वर्ण धरा यह
दैन्य दासता के श्रृंखल जकडे थे तन को;
घोर अविद्या के तम से पीडित थे जनगण,
रूढि रीति के प्रेत युद्ध करते थे मन मे!

घेरे थे विश्वास अन्ध आकाश वेलि-से,
मुण्ड-मुण्ड मे थी विभक्त लघु लोक चेतना:
स्वार्थो मे रत वर्ग, क्षुधित शोषित थी जनता,
पद लुण्ठित जीवन गौरव, मृत मानव आत्मा।
छायी थी जब विकट निराशा की निष्क्रियता,
वीर्यहीन थी भारत भू, भूपति विलास रत,—
प्रकट हुए थे लोक पुरुष तुम आत्म तेजमय
अन्धकार को चीर हुआ हो नव स्वर्णोदय।

देख धरा को तमोग्रस्त, तुम करुणा विगलित,
जीवन रण मे वने दिव्य सारथि फिर जन के,
महा जागरण मन्त्र उच्चरित कर श्री मुख से
युग-युग से निद्रित, जीवन्मृत महाजाति को
जागृत तुमने किया पुन: निज रहस शक्ति से।
स्वाभिमान भर जन मे, क्षण मे किया सगठित
नव्य राष्ट्र मे उन्हे, स्वर्गवत् मातृभूमि के
प्रीति पाश मे बाँध, विरत कर लघु स्वार्थों से।
महापुरुप, निज अभय दान से नव्य प्राण भर,
कंकालो को दिया मनुज का गौरव तुमने,
युग-युग के घन अन्धकार से वाहर लाकर
मृत्युभीत जनगण को दिखलाया प्रकाश नव।
और एक दिन प्राणोद्वेलित जन समुद्र को
मुक्त तिरगे के नीचे समवेत कर पुन:
उन्हे अहिंसात्मक अद्भुत रण कौशल सिखला
छिन्न कर दिये तुमने युग के पाश पुरातन।
एक रात मे मौन गगन हो उठा निनादित
अगणित कण्ठ रटित वन्देमातरम् मन्त्र से।

धन्य सिद्ध जन नायक, तुम कर गये पराजित
चिर अजेय साम्राज्यवाद की लौह शक्ति को
क्षण मे, सौम्य अहिंसा के मगलमय बल से,—
प्रेमामृत से गरल घृणा का अपहृत करके।
सिन्धु तरगो-से, गर्जन भर भारत के जन
आज तुम्हारा गौरव गाते हर्ष उच्छ्वसित।

(स्तवन वाद्य : समवेत गान)

जय जन भारत भाग्य विधाता,
लोक मुक्ति वर दाता।
प्रजातन्त्र भारत के जनगण
गाते गौरव गाथा।
जय स्वतन्त्रता के रण नायक,
महाजाति के नव उन्नायक,
भू गौरव, जन राष्ट्र विधायक
जय युग मन के ज्ञाता।
वीर, अहिंसा रत, व्रतधारी,
धीर, सत्य के असि पथ चारी,
दैन्य दासता के भय हारी
जग जीवन तम त्राता।
श्रद्धाजलि देते नर - नारी
जय - जय राष्ट्र पिता बलिहारी,
तप पूत मन, जन हितकारी,
नव जीवन निर्माता।

(अभिवादन संगीत)

पुरुष स्वर

धन्य हुई यह मातृ धरा युग लक्ष्मी फिर से
आज इसे अभिषेकित करती जनगण मन के
सिंहासन पर अभिनन्दित करती नव युग की
ऊषा, इसके गौरव दीपित रजत भाल पर
स्वर्ण शुभ्र किरणो का जगमग ज्योति मुकुट धर।
वृद्ध देश, हिम श्वेत श्मश्रु स्मित, शोभित जो नित
पुरुष पुरातन-सा विकास प्रिय इस पृथ्वी पर,
सजीवन पा आज जनो का यौवन उसके
मूर्तिमान हो रहा पुन नव लोक तन्त्र मे।
जय निनाद करता जन सागर उमड चतुर्दिक्
हर्ष तरगित अपने शत - शत शीश उठाये,
फहराता विजयी तिरग ध्वज इन्द्रधनुष - सा
दिग् दिगन्त मे रग छटाएँ बरसा अगणित,—
पुष्प वृष्टि करते हों ज्यो नभ से फिर सुरगण।
महाभूमि यह, जिसके श्री विराट् प्रागण मे
प्रथम सभ्यता विहँसी भू पर भू प्रकाश-सी,

जिसकी निभृत गुहाओ मे पहिले मनुष्य को
आत्मोन्मेष हुआ . युग द्रष्टा ऋषिगण विचरे
स्वर्ग शिखा ले जहाँ सत्य की अमर खोज मे -
जिसके ज्योतिर्मय मानस पलने मे पलकर
धर्म ज्ञान संस्कृतियाँ शतश. फैली जग मे,
जिसके दर्शन के स्फटिकोज्ज्वल शुभ्र सौध मे
स्वत अवतरित हो मगलमय पुरुष परात्पर
वास कर रहे मूर्त सत्य-से जन - मन नभ मे
राम कृष्ण गौतम लौटे जिसकी शुचि रज पर,—
अभिवादन करते जनगण उस दिव्य भूमि का
आज पुन दिक् प्रतिध्वनित उल्लसित स्वरो मे—
वन्दे मातरम्
सुजला सुफला मलयज शीतलाम् ।

तपोभूमि यह, राजतन्त्र के युग मे जिसने
राम राज्य का पूर्णादर्श दिया जगती को,
आज असंख्य विमुग्ध लोक नयनो से निर्मित
नव युग तोरण से प्रवेश कर रही पुनः वह
जन-मन दीपित धरा चेतना के प्रागण मे,
लोक साम्य के द्यौ चुम्बी प्रासाद मे महत्,
सर्वभूत मे फिर अपने को अनुभव करने ।

स्वर्ग खण्ड यह, हाय, शम्भु-सा समाधिस्थ हो
विचरण करता रहा कहाँ तब मध्य युगो मे
आत्मा के सोपानो मे खो ऊर्ध्व, ऊर्ध्वतर
आत्मोल्लास प्रमत्त, जगत के प्रति विरक्त हो ?
जीवन मन के सकल कर्म व्यापार त्यागकर
यह नि स्पृह, निश्चेष्ट, शून्य, नि सज्ञ बन गया
स्थाणु सदृशक्यो ? बाह्य अचेतन स्थिति मे अपनी
दैन्य दासता दु ख अविद्या के बन्धन से
वेष्टित, सहता रहा आत्मपीडन क्या केवल
जन भू का विष धारण करने नीलकण्ठ मे ?

(कालयापन-सूचक सगीत)

स्त्री स्वर

जाग रहा फिर राष्ट्रपिता के मन का भारत,
जाग रही फिर आत्मभूमि, अन्त. प्रकाश से
अपने सँग सोयी धरती को चेतन करने ।
जन हिताय निर्माण कर रही वह नव जीवन
लोक तन्त्र की सुदृढ नीव रख अन्तरैक्य पर,
स्वर्ग ज्योति चुम्बी धर शिर कलश सत्य का ।

विचरण करे प्रजा युग अभिनव जन भारत में
दूर-दूर तक शिक्षा संस्कृति का प्रकाश भर,

सुख वैभव की स्वर्णिम किरणो से कर मण्डित
झाड फूँस के भग्न घरौंदो को, युग-युग से
दैन्य अविद्या के तम से जो त्रस्त ग्रस्त है!
नगे भूखे रुग्ण अस्थि पजर गत युग के
जहाँ रेंगता भार ढो रहे भू जीवन का
वर्ग सभ्यता के उस निचले नरक मे, जहाँ
अन्न वस्त्र का घोर अभाव रहा अनादि से,
और सभ्यता सस्कृति की स्वर्ग-स्मित किरणे
पैठ न सकी जहाँ, जीवन आह्लाद कभी भी
पहुँच नही पाया, जन-मन का नीरव रोदन
मात्र हृदय सगीत रहा उच्छ्वसित, अतन्द्रित!

आज तुम्हारा नव भारत निज रक्त दान से
पुण्य स्नात कर धरती के जन का विषण्ण मुख
सर्वप्रथम सौन्दर्य प्रसन्न करे मानव को!
उसकी चिर वसुधैव कुटुम्बक मातृ क्रोड मे
एक अहिंसक मानवता ले जन्म आत्म स्मित,
नयी चेतना की प्रतिनिधि हो जो भू के हित!
विविध मतो, वर्गों, राष्ट्रो मे बिखरे जन को
मनुष्यत्व मे बाँध नवल भू स्वर्ग रचे वह!
जीवन का ऐश्वर्य प्रेम आनन्द उतरकर
अन्तर्मानस से, महिमा मूर्तित हो जिसमे:
युद्ध दग्ध जन-भू पर व्यापक लोक तन्त्र का
नव आदर्श करे स्थापित वह सर्व समन्वित,
अभिनव मानव लोक सृजन कर नर देवो हित!
युग-युग तक गावे भारत जन एक कण्ठ हो
जनगण मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता!

(स्तवन सगीत . भारत वन्दना)

जयति जयति ज्योति भूमि,
जय भारत ज्योति देश!

ज्योति शिखर हिमवत् मन,
ज्योति द्रवित सुरसरि तन,
ज्योतित कर धरणि सकल
हरे विश्व तमस क्लेश!

उठो, उठो, नवल तरु
तिमिर चीर जगो अरुण,
भेद भीति तजो, बँधो
लोक प्रीति मे अशेष!

ज्योति पुरुष खड़े द्वार
तुम्हे फिर रहे पुकार,

स्त्री स्वर

धन्य हुई जन धरणी यह, अवतरित हुए तुम
मर्त्यलोक मे फिर देवोपम गरिमा लेकर,
विचरे मेरु शिखर-से नव किरणो से भूषित
शुभ्र काय मन, नव्य चेतना की ज्वाला को
जन-मन मे दीपित करने, करुणा प्रेरित हो !

बाँध गये नव संस्कृति मे तुम विश्व जनो को
मनुष्यता का मुख नव महिमा से मण्डित कर,
नर चरित्र का रूपान्तर कर, जन गण मन को
श्रद्धा से पावन, धरणी को स्वर्ग स्नात कर !

किन शब्दो मे श्रद्धांजलि दें आज हृदय की,
देव, महामानव, हे राष्ट्रपिता हम तुमको !
वाष्पाकुल हैं नयन, हर्ष श्रद्धा गद्गद स्वर,
प्रीति प्रणत शत-शत प्रणाम हो स्वीकृत जन के !

(स्तव सगीत : समवेत गान)

जय नव मानव, जय भव मानव !
स्वर्ग दूत नव मानवता के,
विचरो ज्योति शिखा ले अभिनव !

प्रीति पाश मे बाँधो जन - मन,
श्रद्धा पावन हो जन जीवन,
बनो शुभ्र विश्वास सेतु तुम,
शान्त सकल हो भव के विप्लव !

स्वर्ग हृदय हो जन मे स्पन्दित
स्वर्ण चेतना से भू मण्डित,
अमृत स्पर्श से हरो मृत्यु तम,
जन मंगल हो, जीवन उत्सव !

शुभ्र सत्य का हो जन-मन पथ,
शुभ्र अहिंसा का जीवन व्रत,
विश्व ग्लानि मे नव प्रकाश बन
निखरो, शुभ्र पुरुष, युग सम्भव !

(२ अक्तूबर, १९५०)

विद्युत् वसना

विद्युत् वसना स्वाधीनता की चेतना का रूपक है, जो स्वाधीनता दिवस के अवसर पर लिखा गया था। स्वाधीनता ध्येय नही, साधन मात्र है : ध्येय है अन्तर्निर्भरता तथा एकता। इस युग मे जन स्वतन्त्रता की उपयोगिता लोक एकता तथा विश्व मानवता के निर्माण ही मे चरितार्थ हो सकती है : यही इस रूपक का सन्देश है।

स्त्री-पुरुष स्वर
विद्युत् वसना
जनगण

(मेघ घोष के साथ तुमुल वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

यह विद्युत् वसना का रूपक है साकेतिक,
नव युग का सन्देश भरा जिसमे ज्योतिर्मय,
स्वतन्त्रता की अमृत चेतना, जो मेघो के
रन्ध्रो से है फूट रही जन मनोगगन मे,
आज उतरने को वह आतुर, जन धरणी के
जीवन के प्रागण मे, विद्युत् निर्झरिणी-सी,—
अन्धकार से भरे गह्वरो को पृथ्वी के
नव प्रकाश रेखाओ से आन्दोलित करने !

आज टूटने को है युग की दुर्धर ज्वाला
जन - मन के शृगो पर पावक के प्रवाह-सी,
जाग रहे भू-रज मे सोये अग्नि बीज फिर
अभिनव इच्छाओ के ज्योति प्ररोहो मे हँस !
उद्वेलित धरणी का उर, युग की आभा का
अभिवादन करने को, जय नादो से मुखरित !

(जय निनाद)

अपनी शुभ्र छटा के अचल मे लपेटकर
अमर सँदेशा लायी है स्वाधीन चेतना
ज्वलित स्वर्ण शोभा से मण्डित, जनगण के हित,—
सावधान हो सुनें मर्त्य भू के वासी जन !

(उद्बोधन वाद्य सगीत के साथ दूर से आते हुए करुण समवेत गीत के स्वर)

गीत

घोर तमिस्रा छायी,
कौन सँदेशा लायी ?

घुमड़ घटाएँ घिरती प्रतिक्षण
गगन क्रुद्ध हो भरता गर्जन,
अन्तरिक्ष के उर मे किसने
रक्त ज्वाल सुलगायी !

झिल्ली क्या बज उठती झन-झन
जगा गुहाओं मे युग रोदन,
गूढ घाटियो मे जीवन की
अँधियाली गहरायी !

बिजली रह - रह करती नर्तन
ज्योति अन्ध कर जन के लोचन,
फिरती उर मे आवेशो की
उठ काली परछाई !

बदल रहे जन, बदल रहा मन,
बदल रहा युग औ' युग जीवन,
प्रलय सृजन की उन्मद बेला
अब अकूल लहराई !

(तानपूरे के अशान्त स्वर)

स्त्री स्वर

हर्ष रुदन करता धरती का कातर अन्तर,
उमड़ रहे है महा बलाहक सृजन छटा स्मित,
कंकालो की पग ध्वनि से कँप उठता भू तल,
जीर्ण अस्थि पजर बढते है विजय ध्वजा ले !

महानाश के खँडहर पर जन-मन उन्मादिनि
नाच रही है विद्युत् वसना लोक चेतना
अट्टहास-भर, शत स्फुलिंग बरसा अम्बर से,
नव जीवन के अग्नि प्ररोहो मे रोमाचित !
गाती है उन्मत्त गीत वह मन्द्र स्तनित भर !

(मेघ गर्जन तथा मन्द्र गभीर वाद्य ध्वनि)

विद्युत् वसना

जन आकाक्षा के शिखरो पर
पग धर मैं युग ताण्डव करती,
चिर अन्धकार से ज्योति खीच
युग अन्धकार का भय हरती !

मैं वाष्प धूम के अणुओ को
निज स्पर्श ज्वाल से चटकाती,
शत बाधा बन्धन के शृखल
उन्मत्त हर्ष से तडकाती !

मैं प्रलय ज्वार - सी उठती हूँ
धरती स्वतन्त्रता मे न्हाती,
मैं नाश सृजन के पंखो मे
आँधी - सी उड़, आती - जाती !

(झंझासूचक ध्वनि-प्रभाव)

जन स्वर

तुम आओ, शत बलिदान यहाँ
अभिवादन के हित तत्पर है
तुम आओ, शत-शत प्राण यहाँ
अभिलाषाओ से जर्जर है ।

तुम उतरो, नव आदर्शों के
शिखरो पर किरणे बरसाओ,
उतरो, उर्वर तलहटियो मे
फिर ज्योति बीज नव बिखराओ ।

आओ हे, तुम जन सस्कृति के
पथ को दिग् विस्तृत कर जाओ,
युग - युग से पक भरी भू को
सौन्दर्य ज्वार मे नहलाओ ।

विद्युत् वसना

मदिरा की ज्वाला - सी मादक
मैं जाग्रत् विस्मृति लाती हूँ,
महलो को खँडहर, खँडहर को
फिर उठते महल बनाती हूँ ।

पतझर के वन को मांसल कर
नव रूप रग भर जाती हूँ
मूको को कर वाचाल,
पगुओ को चढना सिखलाती हूँ ।

जन स्वर

तुम आओ, मन के धनी यहाँ
तन के भूखे करते स्वागत,
तुम देखो, युग - युग से सोये
रज के सपने होते जाग्रत् ।

देखो हे, तन - मन के शोषित
अब तोड रहे दुख के बन्धन,
नव मानवता मे जाग रहे
मिट्टी के पुतले नव चेतन ।

(वाद्य स्वर परिवर्तन)

पुरुष स्वर

अन्धकार बढता जाता है, युग प्रभात है
होने को निश्चय ! सहसा मर्मर हर्हर् ध्वनि
फूट पडी है नग्न डालियो मे जन वन की !
मलय पवन तूफान बन रहा ! सर् मर् चर् मर्

टूट रहे है जीर्ण खोखले वृक्ष ठूँठ अब
भूमिसात् हो ! नाच रहे झर-झर कर पत्ते
शुष्क पीत मृत, घूम - घूम शत आवर्तों में !
धूलि कणो के भँवर उठ रहे, लोट-लोट कर
धूसर भुजगो-से झझा कम्पित धरती पर !

(ध्वनि प्रभाव)

अन्धड़ आया, अन्धड आया, घोर बवण्डर !
कोलाहल से बधिर हो रहे विश्व के श्रवण !
भूमि कम्प यह, हिल-हिल उठती भू की जडता,
काँप रहे पर्वत, टकराते शृग अग्नि मुख !
स्फीत तरगो पर चढ रही तरगें उन्मद,
फेनो के क्षण-अट्टहास्य मे उबल रहा जल !
आधि व्याधि कटु दैन्य दु.ख का फटता कर्दम,
टूट कगार रहे, छितराते बालू के कण !

धूल धुन्ध ! उड रहे युगो के द्वन्द्व पराजय,
हानि लाभ, शत जन्म-मरण ! छा गया चतुर्दिक्
मिट्टी का बादल ! धरती हो नयी बन रही
नाच-नाच नव युग परिवर्तन के इंगित पर !
निखर रही हैं नयी चोटियाँ, नयी तलहटियाँ
दिग् विस्तृन, जीवन किटाणुओ से नव उर्वर !

(युग परिवर्तन-सूचक घोर तुमुल सगीत · दूर से आते हुए समवेत स्वर)

दिग् हसने, अयि विद्युत् वसने !
अट्टहास से चकित दिगन्तर,
शत प्रलयकर दशन !
विद्युत् वसने !

अग्नि वृष्टि करता युग अम्बर,
रक्त तरगित जन-मन सागर,
नाच रही तुम निर्मम ताण्डव
जन मद झकृत रसने !
विद्युत् वसने !

स्वार्थों मे छिड रहा तुमुल रण
आज खुल रहे युग-युग के व्रण,
उमड उठा भू का अवचेतन
अयि जीवन तम अशने !
विद्युत् वसने !

(तानपूरे के स्वर)

विद्युत् वसना

प्राणो के नीरद से आवृत
जगती का अम्बर दिशा हीन,

मैं मुक्त चेनना हूँ उसकी
सघर्षो से दीपित नवीन !
वह सतरँग शोभा मे हँसता
शत आकाक्षाओ से मन्थित,
नव जीवन की हरियाली मे
झरता रहता करुणा विगलित !

मैं उसकी आभा की अप्सरि
युग शिखरो पर नर्तन करती,
बजती चल पावक की पायल
जन-मन मे रण गर्जन भरती !

मैं अग्नि बीज बोती भास्वर
उपजाती लपटो की खेती,
मैं महा प्रलय के पखो की
छाया मे सर्जन को सेती !

(मेघ गर्जन, झझा का शब्द और कोलाहल)

स्त्री स्वर

हहर रही हैं जन स्वतन्त्रता की खर झंझा,
बीज बो रही जो पतझर मे नव वसन्त के :
क्या है इसका ध्येय ? गरजती हुई घटा यह
सतरगी ले विजय ध्वजा किस मनोल्लास को
उमड-घुमड घिर रही जनो के मनोगगन मे ?
कौन महत् उद्देश्य, कौन प्रेरणा हृदय की,
जीवन की कल्पना कौन, अगणित जनगण को
एक प्राण कर चला रही है आज अतन्द्रित ?
बढते अडिग चरण असख्य, निर्भय अमोघ, दृढ,
पदाघात से कम्पित कर धरणी का प्रागण,—
कँप-कँप उठती युग-युग की शका, कायरता,
हिल-हिल पडते मनोलोक, गत आदर्शो के
शिखर बिखरते, धँसती भू मे रूढि रीतियाँ
शत कृमि कीटो से जर्जर, स्वार्थो से स्थापित ?

(उत्तेजनाद्योतक ध्वनि प्रभाव)

दुर्निवार कामना ! कौन-सी महाशक्ति यह
जन समुद्र को है ढकेलती युग तोरण से
नव प्रभात के सद्य प्रज्वलित नव प्रदेश मे ?—
जीवन का सौन्दर्य, धरा का स्वर्णिम वैभव
जहाँ हँस रहा दिग् दिगन्त मे जन-जन के हित !
कौन दिशा है वह ? मजिल है कौन वह नयी ?
क्या आशय है लोक जागरण, लोक मुक्ति का ?
गाओ युग की वीणे, पावक के तारो से
नव ज्योतिर्मय, शान्त, मधुर, स्वर सगति बरसा !

(मंगलवादन : आकाशवाणी)

इस युग की स्वाधीन चेतना अभय बढ़ रही
लोक एकता, विश्व एकता के मन्दिर को!
साधन केवल जन स्वतन्त्रता,—मनुज एकता
लोक साम्य औ' विश्व प्रेम ही साध्य ध्येय है!
जनता का नव युग सम्बल है! मनुष्यत्व ही
जन बल की महिमा, जन गौरव का किरीट है!
जन स्वतन्त्रता नहीं,—लौह संगठित जनों की
अन्तर् निर्भरता ही युग का परम लक्ष्य है!
बोलो जनता की जय, नव मानवता की जय!

(हर्ष वाद्य ध्वनि : समवेत गीत)

बरसो हे जन-मन के बादल!
नव जीवन की हरियाली में
हरसो हे नव स्वर्गिम उज्ज्वल!

उमड़ो, श्यामल दृग हो अम्बर
घुमड़ो, विद्युत् प्रभ हो अन्तर,
गरजो हे, जय हर्षध्वनि-भर
नव प्ररोह पुलकित हो भूतल!

सतरँग विजय ध्वजा धर छहरो
भू की बाँहों में भर बहरो,
श्री शोभा के शस्य-हास्य से
बरसे जन-भू में जन मंगल!

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

नव लास्य कर रही गगन में विद्युत् हासिनि
नव हास्य भर रही हृदय में अन्तर्वासिनि,
उतर रही है ज्योति जाह्नवी नव्य चेतना
उभर रहा धरती का मन आवर्त शिखर बन,—

स्वागत देने नव्य प्रभा को,
धारण करने दिव्य विभा को!

(अभिवादन वाद्य संगीत : जन गीत)

ज्योति शिखावाही (जन)
प्रीति शिखावाही!

बादल छँट गये बिखर
नवल क्षितिज रहा निखर,
विहँस उठा हृदय शिखर,
ऊषा मुसकायी!

ज्वाला के बढ़ते पग
हँसता जन जीवन मग,

जग का प्रागण जगमग
देता दिखलायी !

अन्धकार रहा भाग, रहा भाग,
ज्योतिर्मय उठे जाग, उठे जाग,
मृत्योर्माऽमृत गमय
जन चिर अनुयायी !

(१५ अगस्त, १९५०)

शरद चेतना

शरद चेतना प्रकृति सौन्दर्य का कल्पना प्रधान रूपक है।
इसमे धरती की ऋतुएँ, हेमन्त, शिशिर, वसन्त आदि, आकाश-
वासिनी शरद ऋतु का अभिवादन करती है, जो पृथ्वी पर
उतरकर चारो ओर श्री सुख शान्ति का सचार करती है।
फूल, मुकुल आदि धरती के चराचर आनन्द उत्सव मनाते हैं।

वाचक वाचिका
वर्षा, हेमन्त
ग्रीष्म, वसन्त, शिशिर
प्रकृति, फूल

(वाद्य संगीत)

[आकाश गीत]

शरद चेतना !
प्रीति द्रवित अमृत स्रवित
शुचि हिम हसना !

चन्द्र वदन, कुन्द दशन,
उडु स्मित सर उर चेतन,
स्वप्न पलक पद्म नयन,
नि. स्वर चरणा !

सौम्य स्निग्ध वयस कान्ति,
मूर्तिमती खडी शान्ति,
मिटी विश्व जनित क्लान्ति,
भू तम अशना !

स्वर्ग स्नात भू रज तन,
कौश शुभ्र काँस वसन,
निखर उठा उर यौवन,
अन्तर्वंचना !

धुले निखिल रूप रंग,
धुले मधुर प्राण अग,
निर्मल जीवन तरंग,
कल्मष शमना !

गन्ध अनिल रजत श्वास,
तृण तरु पर मुक्त हास,
लहरो पर ज्योति लास,
सारस रसना !

वाचक

अब वर्षा का व्योम, बरस रिमझिम झड़ियो में,
कोमल हरियाली मे हँस, बिछ गया धरा पर,
जौ गेहूँ के नवल प्ररोहो मे रोमाचित
कँप-कँप उठती भू छायातप की लहरो में !

रँग-रँग के फूलों की हँसमुख उड़ती चितवन
इन्द्रधनुष छायाएँ बरसाती दिशि-दिशि में,
धरती की सौंधी सुगन्ध से जिनकी सौरभ
प्राण शक्ति से मर्म भावना-सी घुल-मिलकर
समुच्छ्वसित कर देती मुग्ध हृदय को बरबस !

स्वर्ण कणो के शालि झूम झुक नयन लुभाते
सहज सुहाते स्वच्छ रुपहले काँसों के वन,
मलिन वासना घुल-सी गयी सरित धारा की,
सरसी जल मे घुल-सी गयी नवल उज्ज्वलता !

कुमुदो में केन्द्रित हो निशि का अपलक विस्मय
कमलो मे खुल सौम्य दिवस के अन्तर्लोचन,
फुल्ल चन्द्र का, स्निग्ध सूर्य का स्वागत करते !
चल खंजन नयनो से, कल चातक पुकार से
भू का सद्यः स्नात मनोरथ प्रकट हो रहा !

मौन मधुर लग रहा धूप का सुघर धुला मुख
अगो से लावण्य फूट - सा पड़ता निश्छल,
डूब भावना मे नव यौवन की निर्ममता
कोमल-सी पड़ गयी,—मध्य वय के आग्रह से
मार्दवता आ गयी मनोरम मातृ प्रकृति मे !

वाचिका

चिर रहस्यमय ताराओ का छाया पथ नभ
निज असख्य नयनों के विस्मय से हरता मन,
स्वप्नो के स्मित ज्योति प्ररोहो से दिक् पुलकित
व्योम हँस रहा दीप्त दिवौषधियो के वन-सा !

निखर उठी नीलिमा, नयनिमा-सी अनन्त की,
निखर उठी नीहार कान्ति निर्वाक् शान्ति मे,
वृष्टि धौत नीलिमा रहस आभा से गुम्फित
महाजागरण - सी सोयी स्मित अन्तरिक्ष में
निविड़ अकम्पित जल-सी निस्तल निश्चेतन की
महा चेतना के पावक से लगती गर्भित !

वाचक

चन्द्रकला का मुकुट धरे निज ज्योति भाल पर
हीरक कनियो की शत ज्वालाओ से जगमग,
तारक लड़ियाँ गूँथ नील लहरी वेणी मे
रजत वाष्प जलदो के सतरँग पंख खोल स्मित,
नवल शारदीया, सुन्दर सुरबाला-सी हँस,
उतर रही, स्वर्गंगा-सी साकार गगन से !

व्योम वासिनी, सूक्ष्म स्वप्न देही आभा वह,
—दिव्य अदिति-सी अन्तर्मन के रजत गगन में,—

उतर रही भू पलको पर अनिमेष स्वप्न-सी
शब्द स्वर रहित अन्तरतम की तन्मय लय मे !
ज्योति द्रवित वह, जिसके स्वप्निल गीलेपन से
भीग रहे मन प्राण मौन शोभा मे मज्जित,
अमृत चेतना वह, जिसके अन्तः प्रवाह मे
डूब रहे उर के तट, भाव तरग ध्वनित हो,
नीरव कलरव से गुजित हर्षातिरेक के !

(वाद्य सगीत)

वाचिका

फूलो की पंखडियो, कोमल रँग बरसाओ,
लोल लहरियो, सरसी उर मे लय हो जाओ,
तरु मर्मर, निज अस्फुट कम्पन मे खो जाओ,
ताराओ की पलको, झिलमिल कर सो जाओ !
प्रिय चकोर, तुम पृथ्वी के अँगार चुग जाओ,
शुभ्र हस पखो, उडान बनकर रह जाओ—

शरद चन्दिरा उतर रही धीरे धरती पर
भारहीन सुकुमार अगभगी मे ओझल,
निज अदृश्य पग, धरती पखुरियो, लहरो पर,
स्वप्न स्पर्श-सी पलको पर, स्मिति-सी अधरो पर !
देखो, फूलो पर हँसते अब रजत तुहिन कण
लहरो के अधरो को चूम रहे स्मित उडुगण,
झलक उठे पत्तो के करतल मे मुक्ताकण,
ज्योत्स्ना के पद चिह्नो से अब अकित भूतल !

भौतिक ज्योति नही है केवल शरद चाँदनी,
आत्म लीन वह अमर चेतना स्वर्ग लोक की,
अतिक्रम कर सब दिशा-काल, तन-मन के बन्धन,
आत्मोल्लास प्रदीप्त, हुई परिव्याप्त चतुर्दिक् !
मधुर प्रणय का स्वप्न हृदय की पलको मे ज्यों
प्रथम बार मुसकाया सद्योज्ज्वल विस्मय में
नही भूमिजा वह, वैदेही भाव शरीरी,
उसके अचल की पावन छाया मे आओ,
फूलो की मृदु पलको, स्वप्नो से भर जाओ,
लोल लहरियो, नव लीला लावण्य दिखाओ !

वाचक

स्यात् हृदय की वीणा होती, तार प्रणय के,
कोमलता का स्पर्श, रुपहली गूँजो मे जग
सुन्दरता झकृत हो उठती नि.स्वर लय मे,
स्वर्गिक स्वर सगति बन उर के श्रवणो के हित,
मनोनयन तब कही देख पाते उस छबि को
शरद चन्द्रिका मे अरूप साकार हुई जो,

प्रीति ज्योति-सी, स्वप्नो के अंगो मे मूर्तित,
स्वर्ग धरा के भावो की सुषमा से भूषित !

(वाद्य सगीत)

वाचिका

परिक्रमा करती भू ऋतुएँ शरद विभा की,
बारी - बारी से हेमन्त शिशिर वसन्त आ,
ग्रीष्म और वर्षा, रंगों से धूप - छाँह से
जल बूंदो से, हिम फुहार से करते स्वागत
पिक चातक के, नृत्य - मयूरो के कण्ठो से
अभिनन्दन गा, शत नव लघ्रो, कमल दल बरसा !

वाचक

सर्व प्रथम हेमन्त कर रहा आत्म निवेदन,
भरा झुर्रियो से आनन, सकुचाया-सा मन
काँप रहे मृदु अधर, वाष्प से आर्द्र है नयन,
घने कुहासे मे - सा लिपटा उसका जीवन !
ठण्ढा हो पड गया सकल उत्साह, क्लान्त मन,—
ठिठका-सा लगता नभ, ठिठुरा-सा भू प्रांगण !

(हेमन्त का गीत)

जीर्ण पलित पीत पात,
कम्पित हेमन्त गात !

हैम धवल पक्व केश
क्षीण काय, सौम्य वेश,
मन्थर गति, मन्द कान्ति,
नतदृग मुख वारिजात !

रजत धूम भरे अंग,
फूलों के उडे रंग,
सरसि मे न अब तरंग,
शीत भीत श्वास वात !

मौन स्वल्प दिवस मान,
रवि मे ज्यो चन्द्र भान,
मुक्त अब न विहग गान,
अश्रु सजल हिम प्रभात !

सिमटे मन देह प्राण,
अधरो का राग म्लान,
प्राणो के निकट प्राण
दीर्घ स्वप्न भरी रात !

(वाद्य सगीत)

वाचिका

छोड श्वास फूत्कार धूलि के साँप नचाता
जरा जीर्ण जगती के पीले पात उडाता,
ध्वंस भ्रंश करता-सा क्रुद्ध शिशिर अब आता
झंझा पर चढ़, थर-थर कँपता, ओठ चबाता !
सी-सी सीटी बजा, रुदन में भरता गायन,
समदर्शिनी शरद का वह करता अभिवादन !

शिशिर का गीत

सन् - सन् बहता समीर,
वेधते सहस्र तीर !
शिशिर सीत्कार भीत
कँपता रज का शरीर !

झरते मर शीर्ण पत्र,
गिरते कँप विटप छत्र,
विचर रहा दुर्निवार
क्रान्ति दूत-सा अधीर !

वो रहा प्रचण्ड बीज
जडता पर खीझ-खीझ,
जीवन के नव प्ररोह
विहँसे भू गर्भ चीर !

सिहर रहे तृण तरु खग,
सिहर रहा धूसर जग,
सिहर उठे भूधर पग,
सिहर रहा लहर नीर !

नग्न भग्न विश्व डाल,
सृजन ध्वस रे कराल,
सुलगें स्वर्णिम प्रवाल
मिटे निखिल दैन्य पीर !

वाचक

नव वसन्त आता अब अधरो मे भर गुजन,
सौरभ से पुलकित मन, फूलो से रंजित तन,
नव-भू यौवन - सा, स्वप्नो से अपलक लोचन,
कुहू - कुहू गा, प्राणो का सुख करता वर्षण !
शरद चेतना मे परिणत अब रगो के क्षण
फूल बने फल, पर्ण काँस, परभृत मरालगण !

(वसन्त का गीत)

नव वसन्त आया !
कोयल ने उल्लसित कण्ठ से
अभिवादन गाया !

रंगो से भर उर की डाली
अधर पल्लवो मे रच लाली,
पंखड़ियो के पख खोल स्मित
गृह वन मे छाया !

सौरभ की चल अलकें मादन,
फूल धूलि मे लिपटा मृदु तन,
नव किशोर वय, क्रीड़ा चचल,
अग-जग को भाया !

मधुपो के सँग कर मधु गुजन
मजरियो मे पिरो स्वर्णकण,
दिशि-दिशि मे नवफूल वाण भर
मन्मथ मुसकाया !

धरा पुत्र यह, फूलो के अँग
प्राणो मे इच्छाओ के रँग,
जीवन के श्री सुख वैभव मे
ऋतुपति कहलाया !

वाचक

अह, निदाघ वरसाता चितवन के पावक कण,
जग के प्राण तपाता, झुलसाता भू-जीवन !
भू-लुण्ठित छाया, कुम्हलाया लतिका-सा तन,
प्यासा जल अव, उडा भाप वनकर गीलापन;
प्रतिक्षण तपकर, जीवन से कर कटु संघर्षण
समदर्शी वन ग्रीष्म शरद का करता वन्दन !

(ग्रीष्म का गीत)

तरुण तापस वीर,
उग्ररूप, प्रचण्ड त्रिनयन-सा
निदाघ गभीर !

धूलि से धूसर जटा घन,
मौन वचन, मुँदे विलोचन,
रुद्ध श्वास, सुखद तृणासन,
वस्त्र विरत शरीर !

तप रहे क्या व्योम भूतल
वह्नि लगती दाह शीतल,
तप्त कांचन देह निश्चल
ध्यान मे रत धीर !

दौडता पागल प्रभंजन
अग्नि के वरसा ज्वलित कण,
म्लान फूलो का लता तन,
शेप नट अव नीर !

रुद्र चक्षु कराल अम्बर
कृश सरित, पंकिल सरोवर,
तडपते खग मृग, अगोचर
चुभ गया हो तीर !

वाचक

लो, वर्षा की घनश्यामल वेणी लहरायी,
धरती को रोमाच हुआ, हरियाली छायी !
प्राणो मे अब जगा गहन जीवन उद्वेलन,
अम्बर मे गर्जन, दिशि-दिशि मे विद्युत् नर्तन !
इन्द्रधनुष मे हँसा गगन का सूना प्रागण
बर्ह भार मे खुला रग चचल भू जीवन !
स्निग्ध शरद का आँगन धो, निज दृग का अजन,
सोन बलाक स्वरो मे वर्षा करती वन्दन !

वर्षा का गीत

नीलाजन नयना,
उन्मद सिन्धु सुता वर्षा यह
चातक प्रिय वयना !

नभ मे श्यामल कुन्तल छहरा
क्षिति मे चल हरिताचल फहरा,
लेटी क्षितिज तले, अर्धोत्थित
शैल माल जघना !

इच्छाएँ करती उर मन्थन
चिर अतृप्ति भरती गुरु गर्जन,
मुक्त विहँसती मत्त यौवना
स्फुरित तडित दशना !

रजत बिन्दु चल नूपुर झकृत
मन्द्र मुरज रव नव घन घोषित,
मुग्ध नृत्य करती बर्हस्मित,
कल बलाक रसना !

बकुल मुकुल से कवरी गुम्फित
श्वास केतकी रज से सुरभित,
भू नभ को बाँहो मे बाँधे
इन्द्रधनुष वसना !

वाचिका

धरती की ऋतुएँ मिलकर करती अभिवादन
चन्द्रमुखी नभ की ऋतु का अनिमेष नयन हो,
विहगो के स्वर, सर के कमल, घनो का वादन,
भू के रगो का वैभव अर्पण कर उसको !
रक्त जवा फूलो से रँगकर उसके पदतल

आम्र मौर का मुकुट, कुँई के कर्ण फूल रच,
हर सिंगार वेणी, बेला कलियों की माला
मधुपो से गुजित कदम्ब मेखला बाँधकर,
करती मानस पूजन वे स्वर्गीय विभा का!
हंसो के चल पखो से झल मन्द मृदु व्यजन,
ज्योतिरिंगणो से जगमग द्युति नीराजन कर
मधुर स्तवन गाती वे ऋतुओ की रानी का,—
किरणोज्ज्वल लहरो के पायल बजा रजत रव,
शिखी पिच्छस्मित परिक्रमा कर नृत्य मत्त हो।

शरद का गीत

अब शुभ्र गगन मे शुभ्र चन्द्र
नव कुन्द धवल तारावलि री,
अब शुभ्र अवनि मे शुभ्र सरसि,
सरसी मे श्वेत कमल दल री!
भू वासिनि ऋतुएँ अन्य सभी,
तुम नभ वासिनि चिर निर्मल री,
वे धरती की रज मे लिपटी,
तुम स्वर्गंगा-सी उज्ज्वल री।
अब काँस हास-से श्वेत धरा,
सरसिज से सित सरिता जल री,
चल हँस पाँति से शुभ्र पवन,
शशि मुख से स्मित नभ मण्डल री!
बेला जूही के फूल धवल,
हिम धवल कुन्द कलियाँ कल री,
तुम चन्द्र शिखा की स्नेह विभा
जो स्वर्ण शुभ्र चिर शीतल री!
आती - जाती ऋतुएँ जग मे
कर जाती भू उर चचल री,
तुम शरद चेतना स्वर्गोज्ज्वल
बरसाती नित जन मगल री।
वे जीवन रगो का मोहक
फैलाती छाया अंचल री,
तुम प्रीति द्रवित स्वर्गाभा - सी
पावन कर जाती भूतल री!
तुम पारदर्शिनी, ज्योतिर्मयि,
अन्तः शोभा मयि निश्छल री,
अस्पृश्य अदृश्य विभा उर की,
वे रूपमयी रज मासल री।

वाचक

रजत नील जल-सी अम्बर सरसी की निर्मल
जिसमे स्वप्नो की अप्सरियाँ तिरती रहती,

अपनी ही आभा मे ओझल शरद चन्द्रिका
कोमलता - सी, तन्मयता - सी, दिव्य दया - सी
विचर रही धरती पर सस्मित स्वप्न चरण धर,
शोभा के स्वर्गीय ज्वार मे डुबा दृष्टि तट।
मुग्ध धरा उर के भावो-से फूलो के शिशु
रँग-रँग की स्मिति बरसा, गाते शरद वन्दना!

फूलो का गीत

आओ हे हँसमुख फूलो, हिलमिलकर हम सब गावे
शरद चेतना के आँगन मे उत्सव मधुर मनावें!
रग पँखडियो के पर फैला अम्बर मे उड जावे,
रजत सुरभि के अलक जाल मे मारुत को उलझावें!
अपलक चितवन के स्मित चंचल वन्दनवार बँधावे
जन भू के पथ पर हँस-हँस शत इन्द्रचाप बरसावें!
तुहिनो के मोती किरणो मे पोकर हार बनावें,
डाल-डाल पर उर स्वप्नो के मोहक जाल बिछावे!
फूलो का तन फूलो की बाँहो मे भर सुख पावें,
स्नेही मधुपो की मधु गुजन सुनकर प्राण जुडावें!

वाचिका

डूब रहा नभ, डूब रही दिशि, डूब रही भू,
एक अनिर्वचनीय महत् आनन्द मे अमित,
द्रवित हो गयी निखिल रूप रेखा धरणी की,
लीन हो गयी अखिल असंगतियाँ जडता की,
विस्मय से अभिभूत प्रकृति के उर से उठता
जिज्ञासा से भरा मौन सगीत गगन को!

प्रकृति का गीत

क्यो हँसते रहते फूल मधुर, क्यो लहरे नित नाचा करती,
क्यो इन्द्रधनुष छायाचल मे किरणे छिप-छिप मतरँग भरती?
क्यो उषा लालिमा मौन सलज नव मुग्धा-सी मन को हरती,
क्यो कुहू-कुहू गाती रहती कोयल चिर मर्म व्यथा सहती?
क्यो अपलक तकते रे तारे, सपने देखा करती धरती,
क्यो शशि को बाँहो मे भरने सागरबेला उठती गिरती?
निज सुख-दुख की ही चिन्ता मे क्यो डूबी रहती है जगती
क्यो स्वप्नो के पर खोल न वह प्रिय तितली-सी उडती-फिरती?
जो घृणा द्वेष की अँधियाली इस धरती मे फैली रहती
तुम उर का प्यार उडेल उसे धो डालो हे, ज्योत्स्ना कहती!

वाचक

अचल पकड प्रकृति का गाते नवल मुकुल दल
अर्ध खुले विस्मित नयनो से प्रथम बार ज्यो
निरख धरा की दुग्ध स्नात अन्त श्री उज्ज्वल!

हरित गौर भू उर पर सोया रजत नील नभ
स्वप्न देखता हो विराट् सौन्दर्य के अमर !

मुकुलों का गीत

हास लास हो हुलास,
सुरभित हो साँस-साँस !

चाँदनी खिली अपार
स्वप्नों का उठा ज्वार,
मौन मुग्ध आर - पार
शोभा श्री का विलास !

प्रकृति कर रही विहार
उमड रहा अतल प्यार,
जगत रे नहीं असार
सुन्दरता आस - पास !

चन्द्रमुख रहा निहार,
सिन्धु उर रहा पुकार,
प्राणों का यह निखार
पान्थ, अब न रह उदास !

खोल रुद्ध हृदय द्वार,
गूँज उठे मूक तार,
जीवन रे वृथा भार
अन्तर में जो न प्यास !

उच्च हो सदैव ध्येय
मन. शक्ति हो अजेय,
शान्ति सौख्य अपरिमेय,
वरद शरद भू निवास।

वाचिका

दुग्ध फेन-सा, म्लान कमल-सा, स्फटिक खण्ड-सा
पावस का शशि उज्ज्वल किरणों से मण्डित हो
दमक उठा अब रजत वह्नि के ज्योतिकुण्ड-सा !
निखिल सृष्टि की शोभा का प्रतिमान रूप-सा,
विश्व प्रकृति के चन्द्रानन-सा चारु सुधाकर
शरद चेतना के प्रेमोज्ज्वल आर्द्र हृदय-सा
बरसा रहा धरा पर स्नेह सुधा के निर्झर !
शान्तगगन अब, सौम्यप्रकृति, स्मितस्निग्धदिशाएँ,
मुग्ध चराचर चन्द्र वन्दना करते नीरव !

(वन्दना गीत)

बरसो ज्योतिर्धाराओं में
बरसो धरती के मानस धन,

अब निर्मल नभ, अब धुला धरा मुख,
खुले सरसि के कमल नयन।
मिट्टी के प्राण प्ररोह जगे,
सात्विक लगते कॉसो के वन,
अब हंसो के पखो मे उड
हँसता धरती का उर चेतन।
बरसाओ हे नव श्री शोभा
हो स्वप्नो से स्मित भू प्रागण,
लहरो मे झलके रजत ज्वाल
फूलो की पलको मे हिमकण।
बरसो हे स्वर्ण सुधा के घट,
बरसो हे रजत विभा के घन,
बरसो भू मानस के प्रतीक,
चेतना सिक्त हो सब भू-जन।

(१ सितम्बर, १९५१)